कर्मग्रंथ (भाग-3)

(चौथा-कर्मग्रंथ)

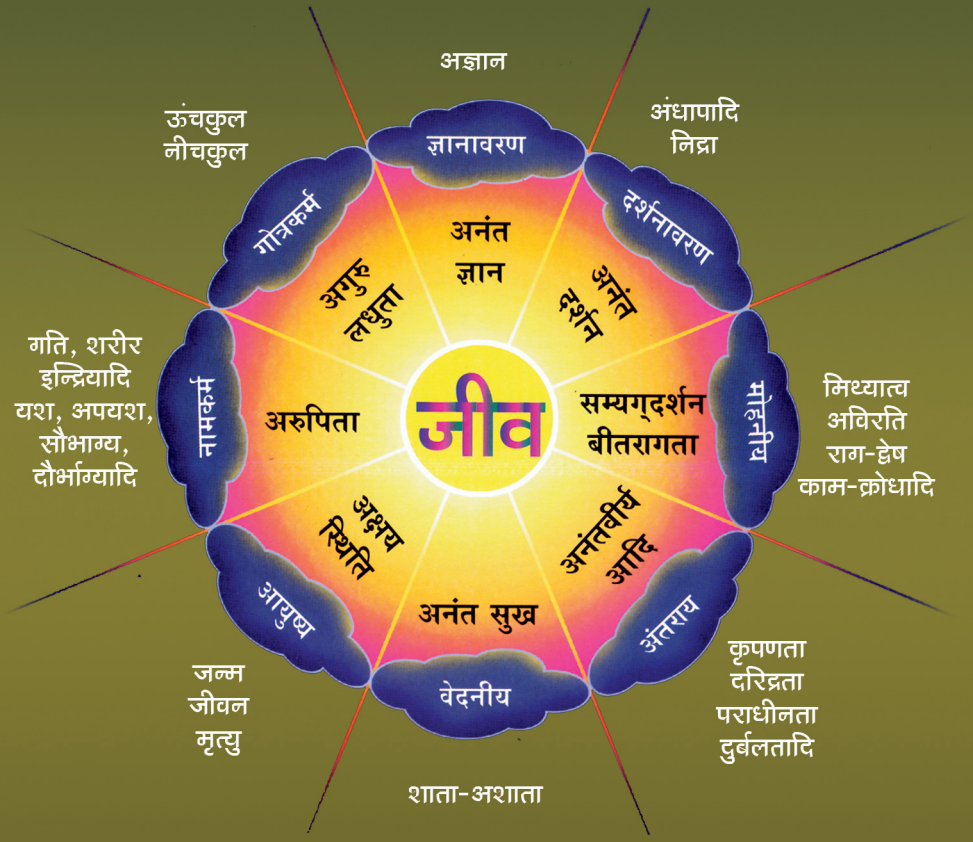

विवेचनकार-संपादक : पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी विरचित–

कर्मग्रंथ भाग-3

(चौथा-कर्मग्रंथ)

विवेचनकार-संपादक

परम शासन प्रभावक, महाराष्ट्र देशोद्धारक

स्व. पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. के

शिष्यरत्न अध्यात्मयोगी, निःस्पृह शिरोमणि पूज्यपाद **पंन्यासप्रवर**

श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के चरम शिष्यरत्न

प्रभावक प्रवचनकार एवं हिन्दी साहित्यकार, मरुधररत्न

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

197

प्रकाशक

दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन,

205, सोना चेंबर्स, 507-509, जे.अेस.अेस. रोड,

चीरा बाजार, सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईंस (E),

मुंबई-400 002. **Tel. 022-2203 45 29**

Mobile : 9892069330

आवृत्ति : प्रथम • मूल्य : 55/- रुपये • प्रतियां-1000
विमोचन स्थल :वी.वी. पुरम्-बेंगलोर • दि. 24-8-2017

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता

शुल्क - 2500/- रु.

- **आप जैन धर्म के रहस्य - जैन इतिहास - जैन तत्त्वज्ञान - जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हो तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य *आचार्यदेव श्रीमद् विजय* रत्नसेनसूरीश्वरजी *म. सा.* द्वारा आलेखित उपलब्ध 10 पुस्तकें दी जाएगी और अर्हद् दिव्य संदेश मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।**

प्राप्ति स्थान

1. **चंदन एजेंसी M. 9820303451**
   607, चीरा बाजार, ग्राउंड फ्लोर, मुंबई-400 002.
   Tel. O. 2205 6821
2. **चेतन हसमुखलालजी मेहता**
   भायंदर. **M. 9867058940**
3. **श्री आदिनाथ जैन श्वेतांबर संघ**
   श्री सुरेशगुरुजी M. 98441 04021
   नं.4, Old No. 38, फ्लोर,रंगराव रोड, शंकरपुरम्, बैंगलुर-560 004. (कर्नाटक)
   राजेश मो. 9986846379

आजीवन सदस्यता शुल्क

Rs. 2500/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, 205, सोना चेंबर्स, 507-509, जे.ऐस.ऐस. रोड, चीरा बाजार, सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईंस (E), मुंबई-2. **Tel. 022-2203 45 29**

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमाट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

(3) राहुल वैद, C/o. अरिहंत मेटल कं., 4403, लोटन जाट गली, पहाड़ी धीरज, सदर बाजार, दिल्ली-110 006. M. 9810353108

प्रकाशक की कलम से...

आज से लगभग 12 वर्ष पूर्व हमारी संस्था की ओर से मरुधर- रत्न, प्रवचन-प्रभावक, माँ सरस्वती-कृपापात्र **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा प्रथम कर्मग्रन्थ के विवेचन रूप **'कर्म विज्ञान'** नाम की पुस्तक का प्रकाशन हुआ था। उस पुस्तक की लोकप्रियता को देख पूज्य आचार्य भगवंत के अन्तर्मन में आगे के कर्मग्रन्थों के भी हिन्दी विवेचन की भावना थी जो आज आंशिक रूप में 12 वर्षों के लम्बे अन्तराल के बाद पूर्ण होने जा रही है।

कुछ वर्षों पूर्व दूसरे व दूसरे कर्मग्रन्थ का विवेचन तैयार हुआ था। अब चौथे कर्मग्रन्थ का विवेचन पूज्य आचार्य भगवन्त ने तैयार किया है।

विशाल भारतदेश के उत्तर भारत और दक्षिण भारत के विशाल हिन्दी-भाषी तत्त्वपिपासुओं की तत्त्व-पिपासा को तृप्त करने के लिए पूज्य आचार्यश्री द्वारा संकलित-संपादित कर्मग्रन्थ का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यन्त ही हर्ष हो रहा है।

हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि पूज्य आचार्यश्री द्वारा आलेखित-सम्पादित पूर्व प्रकाशनों की भाँति यह प्रकाशन भी अत्यन्त लोकोपयोगी सिद्ध होगा।

सम्पादक की कलम से...

चरम तीर्थपति देवाधिदेव भगवान महावीर प्रभु के वरद हस्तों से इन्द्रभूति (गौतमस्वामी) की भागवती दीक्षा के बाद उनके लघुबंधु अग्निभूति प्रभु के पास आए । वे भी चौदह विद्याओं में पारंगत और प्रकाण्ड विद्वान् थे उनके अन्तर्मन में **'कर्म'** के अस्तित्व के विषय में बहुत बड़ा सन्देह था ।

आत्मा को अरूपी मानते हैं और कर्म को रूपी जड़ मानते हैं । जड़ ऐसा कर्म आत्मा को इस संसार में कैसे नचा सकता है ? आत्मा अनन्त शक्तिशाली है-उसकी सारी शक्तियों का हनन करने में कर्म कैसे समर्थ हो सकता है ?

जड़ ऐसे कर्म का चैतन्य पर प्रभुत्व क्यों ? ऐसे अनेक प्रश्न अग्निभूति के अन्तर्मन में घूम रहे थे । तथापि सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तारक परमात्मा ने उसके एक-एक प्रश्न का सही समाधान कर उसे पूर्ण संतुष्ट कर लिया था ।

'जगत् जीव हैं कर्माधीना-' इसका अर्थ है जगत् के सभी जीव कर्म के अधीन हैं ।

कहीं भी जन्म धारण करना हो तो उसमें कोई भी जीव स्वतंत्र नहीं है । सभी जीव कर्म के बंधन से ग्रस्त हैं । उस कर्म के अनुसार ही जीव इस संसार में जन्म धारण करता है ।

संसारी जीव की मृत्यु भी कर्म के अधीन है । मरने की लेश भी इच्छा नहीं है, फिर भी इस संसार में जीवात्मा को मौत की भयंकर सजा भुगतनी पड़ती है ।

सभी जीवों को **'सुख'** ही पाने की इच्छा है, फिर भी न चाहते हुए भी मरणांत कष्टों को संसार में सहन करना पड़ता है और उन सब का कारण एक मात्र कर्म है ।

उस कर्म के बंधन से सर्वथा मुक्त होने का उपाय वीर प्रभु ने बतलाया है । आत्म-विकास के 14 सोपान-सीढ़ियाँ हैं-उन्हें **'गुणस्थानक'** भी कहते हैं । उन गुणस्थानकों में आत्मा कौन

कौनसी कर्म-प्रकृतियों का बंध करती है ?

उन गुणस्थानकों में कौन कौनसी कर्म-प्रकृतियाँ उदय में आती हैं ?

उन गुणस्थानकों में कितनी-कितनी कर्म-प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं ?

कर्म सम्बन्धी सारी जानकारी हमें **देवेन्द्रसूरिजी म.** विरचित कर्मग्रन्थों से प्राप्त होती है ।

पूज्य देवेन्द्रसूरिजी म. ने प्राकृत भाषा में पाँच कर्मग्रन्थों की रचना की है और उसी पर संस्कृत भाषा में टीकाएँ भी रची है ।

दुर्भाग्य है कि वर्तमान जैन श्रावक संघ में से अपनी ही भाषा संस्कृत और प्राकृत लुप्त प्रायः हो चुकी हैं और इसी कारण उपलब्ध होने पर भी उन ग्रन्थों का स्वाध्याय नहींवत् हो गया है ।

संस्कृत-प्राकृत भाषा से अनभिज्ञ तत्त्वपिपासु लोगों के लिए वेणीचंदसुरचंद पाठशाला-महेसाणा की ओर से गुजराती भाषा में सभी कर्मग्रन्थों का गुजराती विवेचन प्रकाशित हुआ था ।

हिन्दी भाषा में इस प्रकार के प्रकाशनों की बड़ी कमी थी ।

आज से 12 वर्ष पूर्व प्रथम कर्मग्रन्थ का हिन्दी भाषा में विवेचन तैयार किया था, जो **'कर्म विज्ञान'** के नाम से प्रकाशित हुआ था- उसके बाद मैंने दूसरे कर्मग्रन्थ का विवेचन तैयार किया था ।

गत वर्ष भिवंडी में 4 दिन की स्थिरता दरम्यान आज से 96 वर्ष पूर्व **पं. सुखलालजी** द्वारा विवेचित चतुर्थ-कर्मग्रन्थ देखने को मिला ! उसे देख मुझे भी चतुर्थ कर्म ग्रन्थ को पुनः सम्पादित करने का मन हो गया । बस, परोपकारी वात्सल्यसिंधु भवोदधितारक पूज्य **गुरुदेव पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** का स्मरण कर कार्य-आरम्भ किया । पूर्वप्रकाशित गुजराती-हिन्दी प्रकाशनों के आधार पर यह हिन्दी-विवेचन तैयार किया है । इसके यश के भागी तो वे विवेचनकार ही हैं । मेरा श्रम तो अत्यल्प है ।

बस, पूर्व महापुरुषों की अमी प्रसादी रूप इन कर्मग्रन्थों का स्वाध्याय कर सभी आत्माएँ कर्म के बन्धनों से मुक्त बनकर शाश्वत सुखों की भोक्ता बनें इसी मंगल कामना के साथ !

पार्श्वभुवन,
चित्रदुर्गा (कर्णाटक),
दि. 10-4-2017

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यास प्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य चरणरज
आचार्य रत्नसेनसूरि

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा. का संक्षिप्त परिचय

गृहस्थ नाम	: राजु (राजमल चोपड़ा)
माता का नाम	: चंपाबाई
पिता का नाम	: छगनराजजी गेनमलजी चोपड़ा
जन्मभूमि	: बाली (राज.)
जन्म तिथि	: भादों सुद-3, संवत् 2014 दि. 16-9-58
बचपन में धार्मिक अभ्यास	: पंच प्रतिक्रमण-नवस्मरण आदि
ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार	: 18 जून 1974
व्यावहारिक अभ्यास	: 1st year B.Com. (पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज फालना-राज.)
दीक्षा दाता	: पू.पं. श्री हर्षविजयजी गणिवर्य
गुरुदेव	: अध्यात्मयोगी **पू. पंन्यास श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
दीक्षा दिन	: माघ शुक्ला 13, संवत् 2033 दि. 2-2-1977
समुदाय	: शासन प्रभावक पू.आ. **श्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.**
दीक्षा दिन विशेषता	: भारत भर में लगभग 50 ऊपर दीक्षाएँ
108 मुमुक्षु वरघोड़ा	: 9 जनवरी 1977, मुंबई
दीक्षा स्थल	: न्याति नोहरा-बाली राज.
दीक्षा समय उम्र	: 18 वर्ष
बड़ी दीक्षा	: फाल्गुन शुक्ला 12, संवत् 2033
बड़ी दीक्षा स्थल	: घाणेराव (राज.)
प्रथम चातुर्मास	: संवत् 2033 पाटण पू.पं. श्री हर्षविजयजी के सान्निध्य में

◆ **अभ्यास :** प्रकरण, भाष्य, 6 कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, न्याय, काव्य, कोश, संस्कृत-प्राकृत व्याकरण, संस्कृत-प्राकृत साहित्य वाचन, ज्योतिष, आगम वाचन आदि.

◆ **भाषा बोध :** हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी आदि

◆ **प्रथम प्रवचन प्रारंभ :** फागुन सुदी 14, संवत् 2034 पाटण (गुजरात)

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ :** बाली संवत् 2038

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन :** बाली (दो बार), पाली (दो बार), रतलाम, अहमदाबाद (ज्ञानमंदिर), पाटण, सुरेन्द्रनगर, रानीगाँव, पिंडवाड़ा, उदयपुर, जामनगर, अहमदाबाद (गिरधरनगर), थाणा, कल्याण, दादर (मुंबई), सायन (मुंबई), धूलिया, कराड़, चिंचवड़, भायंदर, पूना, येरवड़ा, दीपक ज्योति टॉवर, श्रीपाल नगर, कर्जत, भिवंडी (दो बार), कल्याण (दो बार), रोहा, भायंदर, पालीताणा (दो बार) नासिक ।

◆ **विहार क्षेत्र :** राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्णाटक आदि

◆ **पाद विहार :** आजतक लगभग 40,000 K.M.

◆ **छ'री पालक निश्रादाता :** उदयपुर से केशरियाजी, गिरधरनगर से शंखेश्वर, धूलिया से नेर, कराड़ से कुंभोज, सोलापुर से बार्शी, भिवंडी से महावीर धाम, कर्जत से मानस मंदिर, हस्तगिरि से शत्रुंजय-गिरनार, शत्रुंजय बारह गाऊ ।

◆ **प्रथम पुस्तक आलेखन : ``वात्सल्य के महासागर''** संवत् 2038

◆ **अद्यावधि प्रकाशित पुस्तकें :** (190) लगभग

◆ **संस्कृत साहित्य संपादन-सह संपादन :** सिद्ध हैमशब्दानुशासनम्-बृहद्वृत्ति लघु न्यास सह, पांडवचरित्र आदि

◆ **अन्य संपादन :** भगवान पार्श्वनाथ की परंपरा का इतिहास-भाग 1-2-3

◆ **शिष्य-प्रशिष्य : स्व. मु. श्री उदयरत्नविजयजी, मुनि केवलरत्नविजयजी, मुनि कीर्तिरत्नविजयजी, मुनि प्रशांतरत्नविजयजी, मुनि शालिभद्रविजयजी, मुनि स्थूलभद्रविजयजी, मुनि स्व. यशोभद्रविजयजी ।**

◆ **उपधान निश्रा दाता :** कुर्ला, धुले, येरवडा, आदीश्वर धाम (दो), कर्जत, विक्रोली, मोहना, पालीताणा (दो बार), सेसली, नासिक ।

◆ **गणि पदवी :** वैशाख वदी-6, संवत् 2055, दि.7-5-1999 चिंचवड गाँव, पूना.

◆ **पंन्यास पदवी :** कार्तिक वदी-5, संवत् 2061, दि.2-12-2004 श्रीपालनगर, मुंबई.

◆ **आचार्य पदवी :** पोष वदी-1, संवत् 2067, दि.20-1-2011 थाणा.

हिन्दी साहित्यकार मरुधररत्न पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय

रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा आलेखित हिन्दी साहित्य

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
1.	वात्सल्य के महासागर	2038	अध्यात्मयोगी पू. गुरुदेव का जीवन परिचय	बाली
2.	सामायिक सूत्र विवेचना	2039	सामायिक सूत्रों का विवेचन	
3.	चैत्यवंदन सूत्र विवेचना	2040	चैत्यवंदन के सूत्रों का विवेचन	
4.	आलोचना सूत्र विवेचना	2040	इच्छामिठामि आदि सूत्रों का विवेचन	
5.	श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचन	2041	वंदित्तु सूत्र पर विस्तृत विवेचन	
6.	कर्मन् की गत न्यारी	2041	महाबल-मलयासुंदरी का चरित्र	पूना
7.	आनंदघन चौबीसी विवेचन	2041	पू. आनंदघनजी के 24 स्तवनों का विवेचन	
8.	मानवता तब महक उठेगी	2041	मार्गानुसारिता के 18 गुणों का विवेचन	
9.	मानवता के दीप जलाएं	2043	मार्गानुसारिता के 17 गुणों का विवेचन	
10.	जिंदगी जिंदादिली का नाम है	2044	पू.पादलिप्तसूरिजी आदि चरित्र	कैलास नगर राज.
11.	चेतन ! मोहनींद अब त्यागो	2044	'चेतन ज्ञान अजुवालिए' पर विवेचन	रानीगांव
12.	युवानो ! जागो	2045	धुम्रपान आदि पर विवेचन	रानीगांव
13.	शांत सुधारस-विवेचन भाग 1	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
14.	शांत सुधारस- विवेचन भाग 2	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
15.	रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे	2045	लेखों का संग्रह	जयपूर
16.	मृत्यु की मंगल यात्रा	2046	'मृत्यु' विषयक पत्रों का संग्रह	सेवाडी
17.	जीवन की मंगल यात्रा	2046	जीवन की सफलता के उपाय	पिंडवाडा
18.	महाभारत और हमारी संस्कृति-1	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	जयपुर
19.	महाभारत और हमारी संस्कृति-2	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	पिंडवाडा
20.	तब चमक उठेगी युवा पीढी	2047	नव युवकों को मार्गदर्शन	पिंडवाडा
21.	The Light of Humanity	2047	मार्गानुसारित के गुणों का वर्णन	उदयपुर
22.	अंखियाँ प्रभु दर्शन की प्यासी	2047	पू.यशो.वि. की चौबीसी पर विवेचन	शंखेश्वर
23.	युवा चेतना विशेषांक	2047	व्यसनादि पर लेखों का संग्रह	उदयपुर
24.	तब आंसू भी मोती बन जाते है	2047	सागरदत्त चरित्र	उदयपुर
25.	शीतल नहीं छाया रे (गुज.)	2047	गुजराती वार्ताओं का संग्रह	
26.	युवा संदेश	2048	नवयुवकों को शुभ संदेश	पाटण
27.	रामायण में संस्कृति भाग 1	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	राजकोट
28.	रामायण में संस्कृति-भाग 2	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	जामनगर
29.	जीवन निर्माण विशेषांक	2049	सद्गुणोपासना संबंधी लेख	जामनगर

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
30.	श्रावक जीवन दर्शन	2049	श्राद्धविधि ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद	गिरधरनगर
31.	The Message for the youth	2049	युवा संदेश का अंग्रेजी अनुवाद	गिरधरनगर
32.	यौवन सुरक्षा विशेषांक	2049	ब्रह्मचर्य विषयक लेखों का संग्रह	गिरधरनगर
33.	आनंद की शोध	2050	5 जाहिर प्रवचन	गिरधरनगर
34.	आग और पानी भाग-1	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
35.	आग और पानी भाग-2	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
36.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	2068	शत्रुंजय महिमा एवं यात्रा विधि	पालीताणा
37.	सवाल आपके, जवाब हमारे	2050	जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तरी	माटुंगा
38.	जैन विज्ञान	2050	नव तत्व के पदार्थों पर विवेचन	थाणा
39.	आहार विज्ञान विशेषांक	2050	जैन आहार पद्धति	थाणा
40.	How to live true life ?	2050	जीवन की मंगल यात्रा का अनुवाद	थाणा
41.	भक्ति से मुक्ति	2050	प्रभु भक्ति के स्तवन आदि	थाणा
42.	आओ ! प्रतिक्रमण करे	2051	राई व देवसी आदि प्रतिक्रमण	थाणा
43.	प्रिय कहानियाँ	2051	कहानियों का संग्रह	मुलुंड
44.	अध्यात्म योगी पूज्य गुरुदेव	2051	पू. श्री के जीवन विषयक लेख	भायखला
45.	आओ ! श्रावक बने	2051	श्रावक के 12 व्रतों का निर्देश	कल्याण
46.	गौतम स्वामी-जंबुस्वामी	2051	महापुरुषों का विस्तृत जीवन	कल्याण
47.	जैनाचार विशेषांक	2051	जैन आचार विषयक लेख	कल्याण
48.	हंसश्राद्धव्रत दीपिका (गु.)	2051	श्रावक के 12 व्रत	कल्याण
49.	कर्म को नहीं शर्म	2052	भीमसेन चरित्र	कुर्ला
50.	मनोहर कहानियाँ	2052	प्रेरणादायी 90 कहानियाँ	कुर्ला
51.	मृत्यु-महोत्सव	2052	मृत्यु पर विवेचन	दादर
52.	Chaitya Vandan Sootra	2052	अंग्रेजी हिन्दी में मूल सूत्र	
53.	सफलता की सीढियाँ	2052	श्रावक के 21 गुणों पर विवेचन	दादर
54.	श्रमणाचार विशेषांक	2052	साधु जीवनचर्या विषयक	
55.	विविध देववंदन	2052	दीपावली आदि देववंदन	भायंदर
56.	नवपद-प्रवचन	2052	नवपद के प्रवचन	चीराबाजार
57.	ऐतिहासिक कहानियाँ	2052	भरत आदि 19 महापुरुष	सायन
58.	तेजस्वी सितारे	2053	स्थूलभद्र आदि छ महापुरुष	सायन
59.	सन्नारी विशेषांक	2053	सन्नारी विषयक लेख संग्रह	सायन
60.	मिच्छामि दुक्कडम्	2053	क्षमापना पर उपदेश	सायन
61.	Panch Pratikraman Sootra	2053	पंच प्रतिक्रमण मूल सूत्र	सायन
62.	जीवन ने जीवी तूं जाण (गुज.)	2053	श्रद्धांजलि लेखों का संग्रह	सायन
63.	आवो ! वार्ता कहुं (गुज.)	2053	विविध वार्ताओं का संग्रह	सायन

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
64.	अमृत की बुंदे	2054	प्रेरणादायी उपदेश	बांद्रा (ई)
65.	श्रीपाल-मयणा	2054	श्रीपाल और मयणा सुंदरी	थाणा
66.	शंका और समाधान-भाग-1	2054	1200 प्रश्नों के जवाब	थाणा
67.	प्रवचन धारा	2054	पांच जाहिर प्रवचन	धूले
68.	राजस्थान तीर्थ विशेषांक	2054	राजस्थान के तीर्थ	धूले
69.	क्षमापना	2054	क्षमापना संबंधी चिंतन	धूले
70.	भगवान महावीर	2054	महावीर प्रभु के 27 भव	धूले
71.	आओ ! पौषध करें	2055	पौषध की विधि	चिंचवड
72.	प्रवचन मोती	2054	उपदेशात्मक वचन	चिंचवड
73.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	2055	चैत्यवंदन-स्तुति संग्रह	चिंचवड
74.	श्रावक कर्तव्य भाग 1	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
75.	श्रावक कर्तव्य भाग 2	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
76.	कर्म नचाए नाच	2056	महासती तरंगवती चरित्र	सोलापूर
77.	माता-पिता	2056	संतानों के कर्तव्य	सोलापूर
78.	प्रवचन-रत्न	2056	प्रवचनों का आंशिक अवतरण	पूना
79.	आओ ! तत्वज्ञान सीखे !	2056	जैन तत्वज्ञान के रहस्य	चिंचवड स्टे.
80.	क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद	2056	क्रोध के कटु परिणाम	चिंचवड स्टे.
81.	जिन शासन के ज्योतिर्धर	2057	प्रभावक महापुरुष	चिंचवड गांव
82.	आहार क्यों और कैसे ?	2057	आहार संबंधी जानकारी	दहीसर
83.	महावीर प्रभु का सचित्र जीवन	2057	सचित्र संपूर्ण जीवन	थाणा
84.	प्रभु पूजन सुख संपदा	2057	प्रभु दर्शन पूजन विधि	भिवंडी
85.	भाव श्रावक	2057	भाव श्रावक के 17 गुणों पर विवेचन	भायंदर
86.	महान् ज्योतिर्धर	2057	रामचंद्रसूरीश्वरजी का जीवन	भायंदर
87.	संतोषी नर सदा सुखी	2058	लोभ के कटु परिणाम	गोरेगांव
88.	आओ ! पूजा पढाए !	2058	चोसठ प्रकारी पूजाओं के अर्थ	गोरेगांव
89.	शत्रुंजय की गौरव गाथा	2058	शत्रुंजय के 16 उद्धार	भायंदर
90.	चिंतन मोती	2058	विविध चिंतनों का संग्रह	टिंबर मार्केट-पूना
91.	प्रेरक कहानियाँ	2058	प्रेरणादायी कहानियाँ व नाटक	पूना
92.	आईवडिलांचे उपकार	2058	'माता-पिता' का मराठी अनुवाद	पूना
93.	महासतियों का जीवन संदेश	2059	सुलसा आदि के चरित्र	देहुरोड
94.	आनंदघनजी पद विवेचन	2059	आनंदघनजी के 18 पदों पर विवेचन	पूना
95.	Duties towards Parents	2059	माता-पिता का अंग्रेजी	पूना
96.	चौदह गुणस्थानक	2059	'गुणस्थानक क्रमारोह विवेचन	येरवडा
97.	पर्युषण अष्टाह्निक प्रवचन	2059	पर्युषणपर्व के प्रवचन	येरवडा

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
98.	मधुर कहानियाँ	2059	कुमारपाल आदि का चरित्र	येरवडा
99.	पारस प्यारो लागे	2060	पार्श्व प्रभु के 10 भव आदि	येरवडा
100.	बीसवीं सदी के महानयोगी	2060	पूं.पं.श्री भद्रंकरविजयजी स्मृति ग्रंथ	दीपक ज्योतिटॉवर
101.	अमरवाणी	2060	पूं.पं. श्री भद्रंकरविजयजी म. के प्रेरक प्रवचन	दीपक ज्योतिटॉवर
102.	कर्म विज्ञान	2060	'कर्म विपाक' पर विवेचन	दीपक ज्योतिटॉवर
103.	प्रवचन के बिखरे फूल	2061	प्रवचन के सारभूत अवतरण	बोरीवली (ई)
104.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	2061	कल्पसूत्र पर दिए प्रवचन	थाणा
105.	आदिनाथ शांतिनाथ चरित्र	2061	प्रभु के भवों का वर्णन	थाणा
106.	ब्रह्मचर्य	2061	ब्रह्मचर्य पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
107.	भाव सामायिक	2061	सामायिक सूत्रों पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
108.	राग म्हणजे आग	2061	'क्रोध आबाद' का मराठी	श्रीपालनगर, मुंबई
109.	आओ ! उपधान-पौषध करे	2062	उपधान संबंधी विस्तृत जानकारी	भिवंडी
110.	प्रभो ! मन मंदिर पधारो	2062	प्रभु भक्ति विषयक चिंतन	आदीश्वर धाम
111.	सरस कहानियाँ	2062	नल-दमयंती आदि कहानियाँ	परेल मुंबई
112.	महावीर वाणी	2062	आगमोक्त सूक्तियों पर विवेचन	कर्जत
113.	सद्गुरु उपासना	2062	सद्गुरु का स्वरुप	कर्जत
114.	चिंतनरत्न	2062	विविध चिंतन	कर्जत
115.	जैनपर्व प्रवचन	2063	कार्तिक पूनम आदि पर्वों के प्रवचन	कर्जत
116.	नींव के पत्थर	2063	अध्यात्म प्राप्ति के 15 गुण	आदीश्वर धाम
117.	विखुरलेले प्रवचन मोती	2063	प्रवचन के बिखरे फूल का मराठी	वणी
118.	शंका समाधान भाग-2	2063	1200 प्रश्नों के जवाब	आदीश्वर धाम
119.	श्रमण शिल्पी प्रेमसूरीश्वरजी	2063	पूज्यश्री का संक्षिप्त जीवन	भायंदर
120.	भाव चैत्यवंदन	2063	जग चिंतामणि से सूत्रों पर विवेचन	भिवंडी
121.	Youth will shine then	2063	'तब चमक उठेगी' का अंग्रेजी अनुवाद	भिवंडी
122.	नव तत्त्व विवेचन	2063	'नवतत्त्व' पर विवेचन	भिवंडी
123.	जीव विचार विवेचन	2063	'जीव विचार' पर विवेचन	भिवंडी
124.	भव आलोचना	2064	श्रावक जीवन संबंधी आलोचना स्थल	
125.	विविध पूजाएं	2064	नवपद, आदि पूजाओं का भावानुवाद	आदीश्वर धाम
126.	गुणवान बनो	2064	18 पाप स्थानकों पर विवेचन	महावीर धाम
127.	तीन भाष्य	2064	तीन भाष्यों का विवेचन	आदीश्वर धाम
128.	विविध तपमाला	2064	प्रचलित तपों की विधियां	डोंबिवली
129.	महान् चरित्र	2064	पेथडशा आदि का जीवन	कल्याण
130.	आओ ! भावयात्रा करे	2064	शत्रुंजय आदि भाव यात्राएं	कल्याण

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
131.	मंगल स्मरण	2064	नवस्मरण आदि संग्रह	कल्याण
132.	भाव प्रतिक्रमण भाग-1	2065	वंदित्तु तक हिन्दी विवेचन	विक्रोली
133.	भाव प्रतिक्रमण भाग-2	2065	आयरिय उवज्झाए से विवेचन	विक्रोली
134.	श्रीपालरास और जीवन	2065	श्रीपाल मयणा का रास एवं जीवन	थाणा
135.	दंडक विवेचन	2065	दंडक सूत्र पर हिन्दी विवेचन	कुर्ला
136.	पर्युषण प्रतिक्रमण करें	2065	संवत्सरी प्रतिक्रमण विधि	भिवंडी
137.	सुखी जीवन की चाबियाँ	2066	मार्गानुसारिता के 35 गुण (कमलदर्शन)	मुंबई
138.	पाँच प्रवचन	2066	पाँच जाहिर प्रवचन	मोहना
139.	सज्झायों का स्वाध्याय	2066	सज्झायों का संग्रह	मोहना
140.	वैराग्य शतक	2066	वैराग्य पोषक विवेचन	मलाड
141.	गुणानुवाद	2066	10 आचार्यों का जीवन परिचय	रोहा
142.	सरल कहानियाँ	2066	प्रेरणादायी कथाएं	रोहा
143.	सुख की खोज	2066	सुख संबंधी चिंतन	रोहा
144.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-1	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-1	थाणा
145.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-2	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-2	थाणा
146.	आध्यात्मिक पत्र	2067	पू.पं.श्री भद्रंकरविजयजी म.सा. के पत्रों का हिन्दी अनुवाद	थाणा
147.	शंका और समाधान भाग-3	2067	लगभग छोटे मोटे 750 प्रश्नों के जवाब	थाणा
148.	जीवन शणगार प्रवचन	2067	संस्कार शिबिर-रोहा के प्रवचन	धारावा
149.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-1	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
150.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-2	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
151.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-1	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
152.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-2	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
153.	ध्यान साधना	2068	ध्यान शतक-आराधना धाम	हालार
154.	श्रावक आचार दर्शक	2068	धर्म संग्रह का हिन्दी अनुवाद	राजकोट
155.	अध्यात्माचा सुगंध (मराठी)	2068	नीव के पत्थर का मराठी अनुवाद	नासिक
156.	इन्द्रिय पराजय शतक	2068	वैराग्य वर्धक	पालीताणा
157.	जैन शब्द कोष	2068	शास्त्रिय शब्दों के अर्थ	पालीताणा
158.	नया दिन-नया संदेश	2069	तिथि अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
159.	तीर्थ यात्रा	2069	शत्रुंजय गिरनार तीर्थ महिमा	हस्तगिरि तीर्थ
160.	महामंत्र की साधना	2069	चिन्तन	पिन्डवाडा
161.	अजातशत्रु अणगार	2069	श्रद्धाजंली लेख	भद्रंकर नगर-लुणावा
162.	प्रेरक प्रसंग	2069	कहानियां	बाली
163.	The way of Metaphysical Life	2069	नीव के पत्थर का English अनुवाद	बाली

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
164.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-1	2070	प्राकृत प्रवेशिका	सेसली तीर्थ
165.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-2	2070	Guide Book	सेसली तीर्थ
166.	आओ ! भाव यात्रा करे ! भाग-2	2070	68 तीर्थ भावयात्रा	बेडा तीर्थ
167.	Pearls of Preaching	2070	प्रवचन मोती का अनुवाद	नाकोडा तीर्थ
168.	नवकार चिंतन	2070	चिंतन	उदयपूर
169.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-1	2070	दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
170.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-2	2070	63 प्रकार के दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
171.	परम तत्त्व की साधना भाग-1	2071	चिन्तन कीर्ति स्थंभ	घाणेराव
172.	रत्न संदेश भाग-1	2071	दैनिक सुविचार	बाली
173.	गागर मे सागर-1	2071	बाली तथा घाणेराव के प्रवचन अंश	पालीताणा
174.	रत्न संदेश भाग-2	2071	तारीख अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
175.	My Parents	2071	माता-पिता का English अनुवाद	पालीताणा
176.	श्रावकाचार प्रवचन-1	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
177.	श्रावकाचार प्रवचन-2	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
178.	परम तत्त्व की साधना भाग-2	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
179.	परम तत्त्व की साधना भाग-3	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
180.	बाली चातुर्मास विशेषांक	2069	बाली चातुर्मास	बाली
181.	उपधान स्मृति विशेषांक	2072	पालीताणा में उपधान	पालीताणा
182.	नवपद आराधना	2072	नवपद के 11 प्रवचन	लोढा धाम
183.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-1	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	गुंदेचा गार्डन
184.	हेमचंद्राचार्य और कुमारपाल	2072	जीवन चरित्र	डोंबिवली
185.	आईचे वात्सल्य	2072	माता-पिता का मराठी अनुवाद	नासिक
186.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-2	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	नासिक
187.	जैन-संघ व्यवस्था	2072	देव द्रव्य आदि की व्यवस्था	नासिक
188.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-1	2074	1 से 16 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
189.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-2	2074	17 से 24 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
190.	संस्मरण	2073	संयम जीवन के अनुभव	गोकाक
191.	संबोह सित्तरि	2073	वैराग्य का अमृतकुंभ	गोकाक
192.	विवेकी बनों !	2073	विवेक गुण पर विवेचन	राणे बेन्नुर
193.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-3	2073	तत्त्व चिंतन	बेंगलोर
194.	लघु संग्रहणी	2073	जैन भूगोल	बेंगलोर
195.	समाधि मृत्यु	2073	मृत्यु समय समाधि के उपाय	बेंगलोर
196.	कर्मग्रंथ भाग-2	2073	दूसरे व तीसरे कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
197.	कर्मग्रंथ भाग-3	2073	चौथे कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय	पृ. सं.	क्र. सं.	विषय	पृ. सं.
1.	जीवस्थान आदि का स्वरूप	1	31	इन्द्रिय और कायमार्गणा का अल्पबहुत्व	67
2	जीवस्थान	4	32	योग और वेदमार्गणा का अल्पबहुत्व	69
3	जीवस्थानों में गुणस्थान	6	33	कषाय-ज्ञान-संयम व दर्शन मार्गणाओं में अल्पबहुत्व	70
4	जीवस्थान में योग	8	34	दर्शन मार्गणा का अल्पबहुत्व	73
5	जीवस्थानों में उपयोग	11	35	लेश्या आदि पाँच मार्गणाओं का अल्पबहुत्व	73
6	जीवस्थान में लेश्या-बंध	13	36	गुणस्थानों में जीवस्थान	76
7	उदीरणा	15	37	गुणस्थानों में योग	77
8	सत्ता व उदय	16	38	गुणस्थानकों में उपयोग	80
9	बंध स्थान	17	39	सिद्धांत के मंतव्य	81
10	मार्गणा के मूल भेद	19	40	लेश्या व बंध हेतु	83
11	मार्गणास्थान के विशेष भेद	21	41	गुणस्थानों में मूल बंध हेतु	87
12	इन्द्रिय मार्गणा	22	42	गुणस्थानों में बंध	93
13	काय मार्गणा के प्रभेद	23	43	गुणस्थानों में सत्ता और उदय	94
14	योग मार्गणा के प्रभेद	23	44	गुणस्थानों में उदीरणा	95
15	कषाय मार्गणा के प्रभेद	24	45	अल्पबहुत्व	98
16	दर्शन मार्गणा के चार भेद	28	46	छह भाव और उनके भेद	101
17	लेश्याओं के भेद	28	47	द्विक संयोगी के 10 भेद	106
18	भव्यत्व मार्गणा के प्रभेद	30	48	त्रिक संयोगी के 10 भेद	106
19	सम्यक्त्व मार्गणा के प्रभेद	30	49	चतुस्संयोगी के 5 भेद	107
20	संज्ञी मार्गणा के भेद	31	50.	पंच संयोगी	107
21	मार्गणाओं में जीवस्थान	31	51	अजीव द्रव्यों के भाव	108
22	आहारक मार्गणा के प्रभेद	32	52	गुणस्थानों में मूल भाव	110
23	14 मार्गणाओं में 14 जीवस्थान	32	53	संख्या का स्वरूप	112
24	मार्गणाओं में गुणस्थान	38	54	संख्यात के 3 भेद	113
25	मार्गणाओं में योग	44	55	पल्यों को भरने की विधि	115
26	वचनयोग के चार भेद	45	56	पल्यों का उपयोग	119
27	काययोग के 7 भेद	45	57	असंख्यात का स्वरूप	120
28	कार्मण काययोग अनाहारक अवस्था	47			
29	मार्गणाओं में उपयोग	55			
30	अल्प-बहुत्वे	66			

1 जीवस्थान आदि का स्वरूप

नमिय जिणं जिअ मग्गण, गुणठाणुवओग जोग लेसाओ ।
बंधप्पबहू भावे, संखिज्जाइ किमवि वुच्छं ।।1।।

शब्दार्थ :-

नमिय=नमस्कार करके	**जिणं=**जिनेश्वर को
जिअ=जीवस्थान	**मग्गणं=**मार्गणास्थान
गुणठाण=गुणस्थान	**उवओग=**उपयोग
जोग=योग	**लेसाओ=**लेश्या
बंध=बंध	**अप्पबहू=**अल्पबहुत्व
भावे=भाव	**संखिज्जाइ=**संख्याता आदि
किमवि=कुछ	**वुच्छं=**कहूंगा

भावार्थ :- जिनेश्वर भगवंत को नमस्कार करके मैं जीवस्थान, मार्गणास्थान, गुणस्थान, उपयोग, योग, लेश्या, बंध, अल्पबहुत्व, भाव और संख्या आदि के विषय में कुछ कहूंगा ।

विवेचन :- किसी भी उत्तम कार्य की निर्विघ्नतया समाप्ति के लिए मंगल अवश्य करना चाहिए । इस चतुर्थ कर्मग्रंथ **'षडशीति'** के **रचयिता पू. देवेन्द्रसूरिजी म.** जिनेश्वर परमात्मा को नमस्कार कर मंगलाचरण कर रहे है ।

उसके बाद उन्होंने प्रस्तुत ग्रंथ की विषय-सामग्री प्रस्तुत की है ।

इस ग्रंथ में मुख्य तीन विभाग हैं-**जीवस्थान, मार्गणास्थान** और **गुणस्थान ।**

जीवस्थान में गुणस्थान, योग, उपयोग, लेश्या, बंध, उदय, उदीरणा और सत्ता इन आठ स्थानों पर विचार किया गया है ।

मार्गणा स्थान में जीवस्थान, गुणस्थान, योग, उपयोग, लेश्या और अल्पबहुत्व इन छह विषयों पर विचार किया गया है ।

गुणस्थान में जीवस्थान योग, उपयोग, लेश्या, बंध हेतु, बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता, अल्पबहुत्व, भाव और संख्यात आदि संख्या अर्थात् 12 विषयों का विचार किया गया है ।

1) जीवस्थान :- द्रव्य और भाव प्राणों को जो धारण करता है उसे जीव कहते हैं ।

पाँच इन्द्रियाँ, तीन बल, आयुष्य और श्वासोच्छ्वास ये 10 द्रव्य प्राण कहलाते हैं । ये प्राण कर्मजन्य है । अतः संसारी जीवों को ही होते हैं सिद्धों को नहीं ।

ज्ञान, दर्शन आदि भाव प्राण कहलाते हैं, ये प्राण सिद्धों में भी होते हैं ।

2) मार्गणा : गुणस्थान, योग, उपयोग आदि की विचारणा के स्थानों को मार्गणा कहते हैं । जीव के गति इन्द्रिय काय आदि अनेक प्रकार के पर्याय स्थान हैं उन्हें मार्गणा स्थान कहते हैं ।

3) गुणस्थान : ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि आत्मा के मुख्य गुण कहलाते हैं । उन गुणों की शुद्धि-अशुद्धि के तरतम भाव वाले स्थानों को गुणस्थान कहते हैं । मुख्यतया 14 गुणस्थान होते हैं ।

जीवस्थान, मार्गणा स्थान और गुणस्थान जीव की ही अवस्थाएँ हैं, फिर भी उनके बीच थोड़ासा अंतर है ।

1) जीवस्थान–यह जातिनाम कर्म, पर्याप्त-अपर्याप्त नाम कर्म के औदयिक भाव स्वरूप है ।

2) मार्गणास्थान–यह नामकर्म, मोहनीय कर्म, ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म और वेदनीय कर्म के औदयिक आदि भावरूप और पारिणामिक भावरूप है ।

3) गुणस्थान– यह मोहनीय कर्म के औदयिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिक भावरूप तथा योग के भाव-अभाव रूप है ।

4) उपयोग–चेतना शक्ति के बोध रूप व्यापार को उपयोग कहते हैं ।

इसी के द्वारा वस्तु के सामान्य और विशेष स्वरूप को जाना जाता है ।

5) योग– मन, वचन और काया के द्वारा आत्म-प्रदेशों में होनेवाली हलचल को योग कहते हैं ।

6) लेश्या– आत्मा का सहज स्वरूप तो स्फटिक के समान अत्यंत ही निर्मल है, परंतु कृष्ण नील आदि अनेक रंगवाले पुद्गलों के प्रभाव से आत्मा में जो भिन्न-भिन्न परिणाम होते हैं, उन्हें लेश्या कहते हैं ।

7) बंध– दूध और पानी अथवा लोहा और अग्नि के मिश्रण के समान मिथ्यात्व आदि हेतुओं से आत्मा का कर्मपुद्गलों के साथ जो संबंध होता है, उसे बंध कहते है ।

8) उदय– बंधे हुए कर्मदलिकों के विपाकोदय को उदय कहते हैं ।

यह विपाकोदय कर्म का अबाधाकाल पूर्ण होने पर होता है तो कभी कभी अपवर्तना-करण द्वारा पहले भी हो जाता है ।

9) उदीरणा– कर्म का उदय काल नहीं हुआ हो फिर भी प्रयत्न विशेष द्वारा उन्हें खींचकर उदयावलिका में लाना, उसे उदीरणा कहते हैं ।

10) सत्ता– बंधन और संक्रमण-करण से जो कर्म जिस **'कर्म'** रूप में परिणत हुए हों, उनका निर्जरा या संक्रम रूप से रूपांतर न होकर वैसे ही पडा रहना, उसे सत्ता कहते हैं ।

11) बंध-हेतु– मिथ्यात्व आदि विपरीत परिणामों से कर्म योग्य पुद्गल कर्म रूप में परिणत हो जाते हैं उन परिणामों को बंधहेतु कहते हैं ।

12) अल्पबहुत्व– पदार्थों के पारस्परिक न्यून अधिक भाव को अल्प-बहुत्व कहते हैं ।

13) संख्यात– आदि संख्यात, असंख्यात और अनंत की भिन्न पारिभाषिक संज्ञाएँ हैं ।

2 जीवस्थान

इह सुहुम बायरेगिंदि, बि ति चउ असंनि संनि पंचिंदी ।
अपज्जा पज्जत्ता, कमेण चउदस जियट्ठाणा ।।2।।

शब्दार्थ :-

इह=यहाँ	**सुहुमबायर=**सूक्ष्म बादर
एगिंदि=एक इन्द्रिय	**बि=**बे इन्द्रिय
ति=तेइन्द्रिय	**चउ=**चउरिन्द्रिय
असंनिसंनि=असंज्ञी-संज्ञी	**पंचिंदी=**पंचेन्द्रिय
अपज्ज=अपर्याप्त	**पज्जत्ता=**पर्याप्त
कमेण=क्रमशः	**चउदस=**चौदह
जियट्ठाणा=जीव के स्थान	

भावार्थ :- इस लोक में सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय ये सातों भेद पर्याप्त और अपर्याप्त की अपेक्षा से दो-दो प्रकार के होने से जीव के कुल 14 भेद अर्थात् 14 स्थान होते हैं ।

विवेचन :- जैन दर्शन में भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से जीवों के अनेक भेद बतलाए हैं ।

त्रस और बादर की अपेक्षा जीव के दो भेद बतलाए हैं तो स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक की अपेक्षा से जीव के तीन भेद भी बतलाए हैं ।

देव, नरक, तिर्यंच और मनुष्य की अपेक्षा जीव के चार भेद, एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय आदि की अपेक्षा जीव के पाँच भेद, पृथ्वीकाय आदि की अपेक्षा जीव के छह भेद भी बतलाए हैं ।

नवतत्त्व में जीव के 14 भेद बतलाए हैं, बस, उसी अपेक्षा जीव के यहाँ 14 भेद बतलाए हैं ।

पहले सात भेद बतलाकर उन सभी के पर्याप्त, अपर्याप्त दो-दो भेद कर कुल 14 भेद किए हैं ।

(1) सूक्ष्म एकेन्द्रिय : सूक्ष्मनाम कर्म के उदयवाले ये एकेन्द्रिय जीव चौदह राजलोक में सर्वत्र-व्याप्त हैं । संख्यातीत हैं तो भी चर्म चक्षु से गोचर नहीं होते हैं । शस्त्र द्वारा उनका छेदन-भेदन भी नहीं कर सकते हैं । वे जीव व्यवहार के लिए अयोग्य कहे गए हैं ।

(2) बादर एकेन्द्रिय जीव : बादर नाम कर्म के उदयवाले एकेन्द्रिय जीव । ये जीव सर्वत्र होते हों, ऐसा नहीं है । इन जीवों को भी स्वतंत्र रूप में तो नहीं देख सकते हैं, परंतु समुदाय रूप में इकट्ठे हुए हों तो उन्हें आँखों से देखा जा सकता है । इन जीवों के साथ व्यवहार हो सकता है । इन जीवों के सिर्फ एक त्वचा-स्पर्शन इन्द्रिय होती है । ये पृथ्वीकाय आदि पाँच प्रकार के हैं ।

(3) द्वीन्द्रिय जीव : इन जीवों के त्वचा और जीभ, ये दो इन्द्रियाँ होती हैं । शंख, सीप, कृमि आदि द्वीन्द्रिय जीव हैं ।

(4) त्रीन्द्रिय जीव : त्वचा, जीभ और नासिका ये तीन इन्द्रियाँ जिनके होती हैं, वे त्रीन्द्रिय जीव हैं । जूं-खटमल, चींटी आदि त्रीन्द्रिय जीव हैं ।

(5) चतुरिन्द्रिय जीव : त्वचा, जीभ, नाक और आँख ये चार इन्द्रियों वाले जीव चतुरिन्द्रिय कहलाते हैं । उदा. भौंरे, बिच्छु आदि ।

(6) असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव : जिन जीवों के त्वचा, जीभ, नाक, आँख और कान रूप पाँच इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें पंचेन्द्रिय कहते हैं । मन रहित पंचेन्द्रिय जीवों को असंज्ञी पंचेन्द्रिय कहते हैं । उदा. संमूर्च्छिम मनुष्य ।

(7) संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव : पाँच इन्द्रियों के साथ सोचने-समझने के लिए जिनके पास मन भी होता है, वे संज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं-जैसे गर्भज मनुष्य, गाय, भैंस, ऊँट आदि ।

ये सभी सातों प्रकार के जीव पर्याप्त और अपर्याप्त दो-दो प्रकार के होते हैं ।

पर्याप्त जीव : जो जीव स्व योग्य आहार आदि पर्याप्तियों को पूर्ण करने के बाद ही मरते हैं, वे पर्याप्त जीव कहलाते हैं ।

अपर्याप्त जीव : स्व योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करने के पहले ही जो

जीव मर जाते हैं, वे अपर्याप्त कहलाते हैं ।

पर्याप्त, अपर्याप्त के भी दो-दो भेद हैं–

(1) लब्धि पर्याप्त (2) लब्धि अपर्याप्त (3) करण पर्याप्त (4) करण अपर्याप्त ।

(1) लब्धि पर्याप्त : जो जीव पर्याप्त नाम कर्म के उदयवाले हों और स्व योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करके ही मरते हैं वे लब्धि पर्याप्त कहलाते हैं ।

(2) लब्धि अपर्याप्त : जो अपर्याप्त नाम कर्म के उदयवाले हों और स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण किए बिना ही मर जाते हैं ।

(3) करण अपर्याप्त : जब तक जीव शरीर, इन्द्रिय आदि पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं करता है, तब तक करण अपर्याप्त कहलाता है ।

(4) करण पर्याप्त : स्वयोग्य शरीर, इन्द्रिय आदि पर्याप्तियों को पूर्ण कर लेता है, तब करण पर्याप्त कहलाता है ।

देव-नारक के जीव नियम पर्याप्त ही होते हैं, परंतु जब तक वे स्व-योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं करते हैं, तब तक के लिए उन्हें अपर्याप्त भी कहा है ।

3 जीवस्थानों में गुणस्थान

बायर असंनि विगले, अपज्जि पढमबिय संनि अपज्जत्ते ।
अजयजुअ संनि पज्जे, सव्व गुणा मिच्छ सेसेसु ।।3।।

शब्दार्थ :-

बायर=बादर
विगले=विकलेन्द्रिय
पढमबिय=पहला दूसरा
अपज्जत्ते=अपर्याप्त
संनि=संज्ञी
सव्वगुणा=सभी गुणस्थानक
सेसेसु=शेष में
असंनि=असंज्ञी
अपज्जि=अपर्याप्त
संनि=संज्ञी
अजयजुअ=अविरति युक्त
पज्जे=पर्याप्त
मिच्छ=मिथ्यात्व

भावार्थ :- अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय और अपर्याप्त विकलेन्द्रिय में पहला व दूसरा दो ही गुणस्थानक होते हैं ।

अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में पहला-दूसरा व चौथा ये तीन गुणस्थानक होते हैं ।

पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में सभी गुणस्थानक होते हैं । शेष सात जीवस्थानों में अपर्याप्त व पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तथा पर्याप्त विकलेन्द्रिय में सिर्फ पहला ही गुणस्थानक होता है ।

विवेचन :- अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और तीन विकलेन्द्रिय इन पाँचों में जो दो गुणस्थानक कहे गए हैं, वहाँ इतना ख्याल रखना चाहिए कि दूसरा गुणस्थानक करण अपर्याप्त अवस्था में हो सकता है, परंतु लब्धि अपर्याप्त अवस्था में नहीं ।

क्योंकि सास्वादन गुणस्थानक में रहा जीव मरकर लब्धि अपर्याप्त के रूप में कभी पैदा नहीं होता है ।

बादर एकेन्द्रिय में भी सिर्फ पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में ही दूसरा गुणस्थानक होता है, परंतु तेउकाय और वायुकाय के जीवों के दूसरा गुणस्थानक नहीं होता है । अतः बादर तेउकाय और कायुकाय में भी सिर्फ पहला ही गुणस्थानक समझना चाहिए ।

• अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय अवस्था में पहला, दूसरा व चौथा गुणस्थानक इस प्रकार माना गया है–

चौथे गुणस्थानक में रहा हुआ जीव मरकर यदि संज्ञी पंचेन्द्रिय के रूप में पैदा होता है तो करण अपर्याप्त अवस्था में चौथा गुणस्थान संभव है ।

इसी प्रकार कोई जीव सम्यक्त्व का त्याग कर दूसरे सास्वादन भाव का अनुभव करता हुआ मर जाय और संज्ञी पंचेन्द्रिय अवस्था में पैदा होता हो तो जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न करे तब तक सास्वादन गुणस्थानक में रह सकता है, उसके बाद मिथ्यात्व गुणस्थानक प्राप्त हो जाता है ।

अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में जो तीन गुणस्थानक कहे, उसे करण अपर्याप्त अवस्था में ही समझना चाहिए क्योंकि लब्धि अपर्याप्त जीव को तो पहला ही एक गुणस्थानक होता है ।

• पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में मनुष्य को एक से लेकर चौदह गुणस्थानक

प्राप्त हो सकते हैं । छठे से लेकर चौदहवें तक के सभी गुणस्थानक सिर्फ मनुष्य को ही प्राप्त हो सकते हैं, अन्य किसी भी प्राणी को नहीं ।

• उर्युरोक्त सात जीवस्थानों को छोड़ शेष सात जीवस्थानों में अर्थात् अपर्याप्त व पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय और पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय में सिर्फ एक मिथ्यात्व गुणस्थानक ही होता है, क्योंकि उन जीवों के इतने संक्लिष्ट परिणाम होते हैं कि वे मिथ्यात्व से आगे के गुणस्थानक को प्राप्त ही नहीं कर पाते हैं ।

प्रश्न : केवली को केवलज्ञान होने के बाद क्षायोपशमिक ज्ञानात्मक **'भावमन'** नहीं होता है तो उनमें तेरहवाँ-चौदहवाँ गुणस्थानक क्यों माना जाता है ?

उत्तर : केवली के भाव मन नहीं, किंतु द्रव्य मन तो होता है । उसी द्रव्य मन से वे अनुत्तर देव विमानवासी और मनःपर्यवज्ञानी के मन की शंका का समाधान करते हैं ।

अतः उनके द्रव्य मन को लक्ष्य में रखकर ही संज्ञीपने में 1 से 14 गुणस्थानक कहे है । भाव मन की अपेक्षा बारह ही गुणस्थानक होते हैं ।

4 जीवस्थान में योग

अपजत्त छक्कि कम्मुरल मीस जोगा अपज्जसंनीसु ।
ते सविउव्व मीस एसु तणु पज्जेसु उरलमन्ने ।।4।।

शब्दार्थ :-

अपजत्त=अपर्याप्त	**छक्कि**=छह में
कम्मुरल=कार्मण-औदारिक	**मीस**=मिश्र
जोगा=योगा	**अपज्जसंनीसु**=अपर्याप्त संज्ञी
ते=वे	**सविउव्व**=वैक्रिय सहित
मीस=मिश्र	**एसु**=इन सब में
तनु=शरीर	**पज्जेसु**=पर्याप्त में
उरलं=औदारिक	**अन्ने**=अन्य

भावार्थ :- अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, अपर्याप्त विकलत्रिक, अपर्याप्त असंज्ञि-पंचेन्द्रिय इन छह प्रकार के जीवों में कार्मण और औदारिक मिश्र ये दो ही योग होते हैं ।

अपर्याप्त असंज्ञि पंचेन्द्रिय में कार्मण, औदारिक मिश्र और वैक्रिय मिश्र ये तीन योग होते हैं ।

कुछ आचार्यों का मत है कि इन सभी सातों प्रकार के जीवों में जब तक शरीर पर्याप्ति पूरी न हो तब तक सिर्फ औदारिक काय योग ही होता है । औदारिक मिश्र भी नहीं होता है ।

विवेचन :- सूक्ष्म एकेन्द्रिय आदि छह अपर्याप्त जीवों के कार्मण और औदारिक मिश्र ये दो ही योग होते हैं । क्योंकि सभी जीवों के और विग्रह गति में सिर्फ कार्मण योग ही होता है, क्योंकि उस समय औदारिक आदि शरीर का अभाव होता है, अतः योग की प्रवृत्ति कार्मण योग से ही होती है । परंतु उत्पत्ति के दूसरे समय से लेकर स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण न हो तब तक मिश्र योग होता है, क्योंकि उस अवस्था में कार्मण और औदारिक आदि स्थूल शरीर से योग की प्रवृत्ति होती है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय आदि छह स्थान औदारिक शरीरवाले हैं अतः अपर्याप्त अवस्था में कार्मण काययोग के बाद औदारिक मिश्र काययोग ही होता है । ये छह जीवस्थान लब्धि और करण दोनों की अपेक्षा अपर्याप्त समझने चाहिए ।

अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में देव, नारक, मनुष्य और तिर्यंच इन चारों का समावेश होता है, अतः उनमें कार्मण काययोग के बाद देव और नारक हो तो वैक्रिय मिश्र और मनुष्य और तिर्यंच हों तो औदारिक मिश्र होने से कुल तीन योग माने गए हैं ।

शीलांकाचार्य आदि अन्य आचार्यों के मत से सूक्ष्म एकेन्द्रिय आदि छह जीवों में कार्मण, औदारिक मिश्र और औदारिक ये तीन योग माने गए हैं तथा अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में उक्त तीन के साथ वैक्रिय मिश्र और वैक्रिय काययोग इस प्रकार कुल पाँच योग माने गए हैं ।

इस मत के अनुसार `शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जाने पर शरीर पूर्ण हो जाता है, अतः अन्य पर्याप्तियाँ पूर्ण न होने पर भी शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने

के बाद मिश्रयोग नहीं रहता है किंतु औदारिक शरीरवालों के औदारिक काययोग और वैक्रिय शरीरवालों के वैक्रिय काययोग रहता हैं ।

उक्त मतांतर के संबंध में टीका में लिखा है कि शरीर पर्याप्ति पूरी हो जाने से शरीर नहीं बनता, किंतु शरीर की पूर्णता के लिए सभी पर्याप्तियाँ पूर्ण होना जरूरी हैं, अतः शरीर पर्याप्ति के बाद भी मिश्रयोग कहा जाता है ।

सव्वे संनि पजत्ते, उरलं सुहुमे सभासु तं चउसु ।
बायरि सविउव्विदुगं, पजसंनिसु बार उवओगा ।।5।।

शब्दार्थ :-

सव्वे=सभी	**संनि पजत्ते**=पर्याप्त संज्ञी
उरलं=औदारिक	**सुहुमे**=सूक्ष्म
सभासु=भाषा सहित	**चउसु**=चार जीवस्थान में
बायरि=बादर	**सविउव्वि**=वैक्रिय सहित
दुगं=दो	**पजसंनिसु**=पर्याप्त संज्ञी में
बार=बारह	**उवओगा**=उपयोग

भावार्थ :- पर्याप्त संज्ञी में सब योग पाए जाते हैं । पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय में औदारिक काययोग ही होता है ।

पर्याप्त विकलेन्द्रिय त्रिक और पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय इन चार स्थानों में औदारिक और असत्यामृषा वचन ये दो योग होते हैं ।

पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय में औदारिक, वैक्रिय और वैक्रिय मिश्र ये तीन काययोग होते हैं ।

पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में सभी उपयोग होते हैं ।

विवेचन :- पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव सभी छह पर्याप्तियाँ पूर्ण करते हैं, अतः उन जीवों में चारों वचन योग, चारों मनोयोग और सातों काययोग होते हैं ।

यद्यपि कार्मण, औदारिक मिश्र और वैक्रिय मिश्र ये तीनों योग अपर्याप्त अवस्था में ही होते हैं, फिर भी संज्ञि-पंचेन्द्रिय जीवों में पर्याप्त अवस्था में भी होते हैं ।

जब केवली भगवंत केवली समुद्घात करते हैं तब तीसरे चौथे और पाँचवें समय में कार्मण काययोग और दूसरे छठे और सातवें समय में औदारिक मिश्र काययोग होता है ।

जब कोई वैक्रिय लब्धिधारी मुनि वैक्रिय शरीर बनाते हैं, तब उन्हे पर्याप्त अवस्था में भी वैक्रिय मिश्र काययोग होता है ।

चौदह पूर्वधर आहारक लब्धिधारी मुनि जब आहारक शरीर बनाते हैं, तब आहारक शरीर बनाते समय और उस शरीर का विसर्जन करते समय आहारक मिश्रकाययोग होता है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों को सिर्फ औदारिक काययोग ही होता है । मन व वचन का अभाव होने से मनोयोग वचनयोग नहीं हैं तथा वैक्रिय आदि लब्धि का अभाव होने से वैक्रिय आदि योग भी नहीं है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय में दो ही योग होते हैं-उनमें औदारिक काययोग होता है और वचन योग में असत्यामृषा भाषा होती है ।

बादर एकेन्द्रिय-पाँच स्थावर पर्याप्त जीवों के औदारिक, वैक्रिय और वैक्रिय मिश्र ये तीन योग माने गए है ।

वैक्रिय और वैक्रिय मिश्र काययोग सिर्फ वैक्रिय लब्धिवाले बादर वायुकाय के जीवों के होता है । वे जब वैक्रिय शरीर बनाते हैं, तब वैक्रिय मिश्र काययोग और वैक्रिय शरीर बन जाने के बाद वैक्रिय काययोग होता है ।

5 जीवस्थानों में उपयोग

पर्याप्त संज्ञि पंचेन्द्रिय जीवों में सभी प्रकार के बारह उपयोग होते हैं ।

पाँच प्रकार के ज्ञान, तीन प्रकार के अज्ञान तथा चार प्रकार के दर्शन मिलकर बारह प्रकार के उपयोग होते हैं ।

चार दर्शन निराकार (सामान्य) हैं और आठ ज्ञान साकार (विशेष) हैं ।

छद्मस्थों के 10 उपयोग की जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की कही गई है ।

सभी उपयोग क्रमभावी हैं, अतः एक साथ दो उपयोग नहीं होते हैं ।

पज चउरिंदि असंनिसु, दु दंस दु अनाण दस सु चक्खुविणा ।
संनि अपज्जे मणनाण चक्खु केवलदुग विहुणा ।।6।।

शब्दार्थ :-

पज चउरिंदि=पर्याप्त चतुरिन्द्रिय	**असंनिसु=**असंज्ञी पंचेन्द्रिय
दु दंस=दो दर्शन	**दु अनाण=**दो अज्ञान
दस सु=दश में	**चक्खु विणा=**चक्षु बिना
संनि=संज्ञी	**अपज्जे=**अपर्याप्त में
मणनाण=मनःपर्यवज्ञान	**चक्खु=**चक्षु
केवलदुग=केवलद्विक	**विहुणा=**रहित

भावार्थ :- पर्याप्त चतुरिन्द्रिय तथा पर्याप्त असंज्ञी-पंचेन्द्रिय में चक्षु-अचक्षु दो दर्शन तथा मति और श्रुत दो अज्ञान अर्थात् कुल चार उपयोग होते हैं ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय ये चारों पर्याप्त तथा अपर्याप्त, अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय तथा अपर्याप्त असंज्ञि-पंचेन्द्रिय इन दश प्रकार के जीवों में मति अज्ञान-श्रुत अज्ञान तथा अचक्षुदर्शन ये तीन उपयोग होते हैं ।

अपर्याप्त संज्ञि-पंचेन्द्रिय में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, अवधिदर्शन, विभंगज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, अचक्षुदर्शन आदि आठ उपयोग होते हैं ।

विवेचन :- पर्याप्त चतुरिन्द्रिय और पर्याप्त असंज्ञि-पंचेन्द्रिय जीवों में पहला ही गुणस्थानक होता है, अतः चक्षु और अचक्षु दर्शन तथा मति अज्ञान व श्रुत अज्ञान के सिवाय अन्य उपयोग नहीं होते हैं ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय आदि दस में जो तीन उपयोग कहे गए हैं-वे कार्मग्रंथिक मत के अनुसार समझना चाहिए ।

सैद्धांतिक मत कुछ भिन्न है । उसके अनुसार एकेन्द्रिय जीव चाहे सूक्ष्म हो या बादर, पर्याप्त हो या अपर्याप्त हो, उसमें सिर्फ पहला ही । गुणस्थानक होता है । जबकि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञि पंचेन्द्रिय को अपर्याप्त अवस्था में मिथ्यात्व और सास्वादन ये दो गुणस्थानक होते हैं दूसरे गुणस्थानक के समय मति श्रुत को अज्ञान स्वरूप न मानकर

ज्ञानस्वरूप मानते हैं, अतः उनके मतानुसार द्वीन्द्रिय आदि चार अपर्याप्त जीवस्थानों में अचक्षुदर्शन, मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान ये पाँच उपयोग होते हैं ।

द्वीन्द्रिय आदि चार को छोड़ कर शेष छह जीवस्थानों में अचक्षुदर्शन, मजि अज्ञान और श्रुत अज्ञान रूप तीन ही उपयोग होते हैं ।

संज्ञि पंचिन्द्रिय जीवों के भी अपर्याप्त अवस्था में आठ उपयोग माने गए हैं ।

तीर्थंकर तथा सम्यग्दृष्टि देव नारक के उत्पत्ति समय से ही तीन ज्ञान व दो दर्शन होते हैं तथा मिथ्यात्वी देव-नारक के उत्पत्ति समय से ही तीन अज्ञान व दो दर्शन होते हैं, अतः 8 उपयोग होते है ।

मनःपर्यव ज्ञान संयमी आत्मा को ही होता है, अतः अपर्याप्त अवस्था में उसका अभाव होता है तथा केवलज्ञान व केवलदर्शन भी ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के संपूर्ण क्षय से ही होता हैं, कर्म का संपूर्ण क्षय अपर्याप्त अवस्था में संभव नहीं है अतः वह भी नहीं हो सकता है । चक्षुदर्शन, चक्षु इन्द्रिय के व्यापार की अपेक्षा रखता है, अतः वह भी अपर्याप्त अवस्था में नहीं होता है । इस कारण संज्ञि-पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त अवस्था में आठ उपयोग कहे गए हैं ।

6 जीवस्थान में लेश्या-बंध

संनिदुगे छ लेस अपज्ज बायरे पढम चउ ति सेसेसु ।
सत्तट्ठ बंधुदीरण संतुदया अट्ठ तेरससु ।।7।।

शब्दार्थ :-

संनिदुगे=संज्ञि-द्विक में
छ लेस=छह लेश्याएँ
अपज्ज=अपर्याप्त
बायरे=बादर में
पढम=प्रथम
चउ=चार
ति=तीन
सेसेसु=शेष में
सत्तट्ठ=सात-आठ
बंधुदीरण=बंध उदीरणा
संतुदया=सत्ता-उदय
अट्ठ=आठ
तेरससु=तेरह में

भावार्थ :- अपर्याप्त और पर्याप्त संज्ञि-पंचेन्द्रिय में सभी छह लेश्याएँ होती हैं ।

अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय में कृष्ण आदि पहली चार लेश्याएँ पाई जाती हैं ।

शेष ग्यारह जीवस्थानों में कृष्ण आदि तीन लेश्याएँ पाई जाती हैं ।

संज्ञि-पंचेन्द्रिय पर्याप्त को छोडकर शेष तेरह जीवस्थानों में बंध तथा उदीरणा सात या आठ कर्मों की तथा उदय व सत्ता आठ कर्मों की होती है ।

विवेचन :- लेश्या दो प्रकार की होती है-द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या ।

द्रव्य लेश्या पुद्गल स्वरूप है और भाव लेश्या आत्मा के परिणाम स्वरूप है, जो संक्लेश और योग से अनुगत है । संक्लेश के तीव्र-तीव्रतर और तीव्रतम तथा मंद, मंदतर और मंदतम आदि अनेक भेद हो सकते हैं । भाव लेश्या मुख्यतः छह प्रकार की होती है ।

शास्त्र में इन छह लेश्याओं को जामुन खाने की इच्छावाले छह पुरुषों के दृष्टांत से समझाया है ।

1. कृष्ण लेश्यावाला जामुन खाने के लिए जामुन के वृक्ष को ही काटने की इच्छा करता है ।

2. नील लेश्यावाला जामुन खाने के लिए बड़ी डाल को काटने की इच्छा करता है ।

3. कापोत लेश्यावाला जामुन खाने के लिए छोटी डाल को काटने की इच्छा करता है ।

4. तेजो लेश्यावाला जामुन खाने के लिए फलों के गुच्छों को तोड़ने की इच्छा करता है ।

5. पद्म लेश्यावाला जामुन खाने के लिए सिर्फ फलों को तोड़ने की इच्छा करता है ।

6. शुक्ल लेश्यावाला जामुन खाने के लिए फल तोड़ने का भी निषेध करता है । वह कहता है- `अपने को जो फल चाहिए, उतने तो नीचे ही गिरे हुए हैं ।'

संज्ञि पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त के सभी छह लेश्याएँ होती हैं क्योंकि उनमें सभी प्रकार के शुभ अशुभ परिणाम हो सकते हैं ।

यहाँ अपर्याप्त संज्ञि-पंचेन्द्रिय करण अपर्याप्त ही लेने का है क्योंकि लब्धि अपर्याप्त के तो सिर्फ तीन ही लेश्याएँ होती हैं ।

कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याएँ सभी प्रकार के एकेन्द्रिय में होती हैं, परंतु अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय में तेजो लेश्या भी होती है । तेजो लेश्यावाले ज्योतिष आदि देव जब उसी लेश्या में मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय के रूप में पैदा होते हैं, तब अपर्याप्त अवस्था में उन्हें तेजो लेश्या भी होती है । जो जीव जिस लेश्या में मरता हैं, वह उसी लेश्या में उत्पन्न भी होता है ।

अपर्याप्त-पर्याप्त एकेन्द्रिय आदि ग्यारह जीवस्थानों में तीन ही लेश्याएँ होती हैं, क्योंकि वे जीव अशुभ परिणामवाले ही होते हैं, अतः उनमें शुभ परिणामवाली लेश्याएँ नहीं होती हैं ।

6 जीवस्थानों में बंध आदि

पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय को छोड़कर सभी तेरह प्रकार के जीव प्रतिसमय सात प्रकृतियों का बंध करते रहते हैं और जब आयुष्य का बंध करते हैं, तब आठ प्रकृति का बंध करते हैं ।

आयुष्य का बंध जीवन में एक ही बार जघन्य व उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल जितने समय में ही होता है ।

वर्तमान आयुष्य का तीसरा, नौवां तथा सत्ताईसवाँ भाग बीतने पर आयुष्य का बंध होता है, यदि उस समय भी आयुष्य का बंध न हो तो जीवन के अंतिम अन्तर्मुहूर्त में तो अवश्य ही आयुष्य का बंध होता है ।

7 उदीरणा

उदयावलिका से बाहर की स्थितिवाले दलिकों को कषाय सहित या कषाय रहित योग द्वारा खींचकर उदयप्राप्त दलों के साथ भोग लेना, उसे उदीरणा कहते हैं ।

पर्याप्त संज्ञि पंचेन्द्रिय को छोड़ तेरह प्रकार के जीवों में प्रति समय आठ कर्मों की उदीरणा होती है ।

जीवन की अंतिम आवलिका में जब आयुष्य कर्म की उदीरणा नहीं होती है, तब सात ही कर्मों की उदीरणा होती है ।

जो कर्म उदय प्राप्त हो उसी की उदीरणा होती है, दूसरों की नही । उदय प्राप्त कर्म भी जब आवलिका मात्र शेष रह जाता है, तब उसकी उदीरणा रुक जाती है ।

इन तेरह जीवस्थानों में जो अपर्याप्त जीवस्थान हैं, वे लब्धिअपर्याप्त होते हैं, क्योंकि उन्हीं में 7 या 8 कर्मों की उदीरणा घट सकती है ।

8 सत्ता व उदय

आठ कर्मों की सत्ता ग्यारहवें गुणस्थानक तक होती है तथा आठ कर्मों का उदय दसवें गुणस्थानक तक होता है ।

सत्तट्ठ छेग बंधा, संतुदया सत्त अट्ठ चत्तारि ।
सत्तट्ठ छ पंचदुगं उदीरणा संनिपज्जत्ते ।।8।।

शब्दार्थ :-

सत्तट्ठ=सात-आठ	**छेग**=छह और एक
बंधा=बंध स्थान	**संतुदया**=सत्ता व उदय
सत्तअट्ठ=सात-आठ	**चत्तारि**=चार
सत्तट्ठ छ पंच=सात, आठ, छह पाँच	**दुगं**=दो
उदीरणा=उदीरणा	**संनिपज्जत्ते**=संज्ञी पर्याप्त

भावार्थ :- पर्याप्त संज्ञी में सात, आठ छह और एक कर्म का बंध स्थान है । सत्ता व उदय स्थान सात, आठ और चार कर्म का है तथा उदीरणा सात, आठ, छह, पाँच व दो कर्म की होती है ।

विवेचन :- जिन प्रकृतियों का एक साथ में बंध हो उनके समूह को बंधस्थान कहते हैं ।

जिन प्रकृतियों का एक साथ में उदय हो, उनके समूह को उदयस्थान कहते हैं ।

जिन प्रकृतियों की एक साथ में सत्ता हो उनके समूह को सत्ता स्थान कहते हैं ।

जिन प्रकृतियों की एक साथ में उदीरणा हो, उनके समूह को उदीरणा स्थान कहते हैं ।

9 बंध स्थान

उपर्युक्त चार प्रकार के बंधस्थानों में सात कर्म का बंधस्थान उस समय घटता है, जब आयुष्य कर्म का बंध नहीं होता है ।

एक बार आयुष्य बंध होने के बाद दूसरी बार आयुष्य का बंध होने में जघन्य अंतर एक मुहूर्त तथा उत्कृष्ट अंतर अन्तर्मुहूर्त कम 1/3 करोड़ पूर्व वर्ष तथा छहमास कम 33 सागरोपम है ।

सात कर्म के बंध की जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त तथा उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम 1/3 करोड पूर्व वर्ष तथा छह मास कम 33 सागरोपम है ।

आठ कर्म का बंधस्थान आयुष्य बंध के समय होता है । आयुष्य का बंध जघन्य व उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त तक होता है, अतः 8 के बंध स्थान की जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त है ।

छह कर्म का बंधस्थान दसवें गुणस्थानक में होता है । वहाँ आयुष्य व मोहनीय कर्म का बंध नहीं होता है । इसकी जघन्य स्थिति एक समय व उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है ।

एक ही कर्म का बंधस्थान ग्यारहवें, बारहवें व तेरहवें गुणस्थानक में है । वहाँ सिर्फ सातावेदनीय का ही बंध होता है ।

ग्यारहवें गुणस्थान की जघन्य स्थिति एक समय व तेरहवें गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति 9 वर्ष न्यून एक करोड़ पूर्व वर्ष है । अतः एक कर्म के बंध की जघन्य स्थिति एक समय व उत्कृष्ट स्थिति नौ वर्ष न्यून एक करोड पूर्व वर्ष है ।

सत्ता स्थान

सत्तास्थान तीन हैं-आठ, सात और चार कर्मों का । आठ का सत्तास्थान पहले से ग्यारहवें गुणस्थानक तक है ।

अभव्य की अपेक्षा अनादि अनंत व भव्य की अपेक्षा अनादि सांत है ।

सात की सत्ता सिर्फ बारहवें गुणस्थानक में होती है । इस गुणस्थानक की जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त की है ।

चार कर्मों का सत्तास्थान तेरहवें व चौदहवें गुणस्थानक में होता है । इन गुणस्थानकों में सिर्फ चार अघाति कर्मों की ही सत्ता रहती है ।

चार के सत्तास्थान की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट स्थिति नौ वर्ष न्यून एक करोड़ पूर्व वर्ष है ।

उदय स्थान

आठ कर्मों का उदयस्थान पहले से दसवें गुणस्थानक में है । यह स्थिति अभव्य की अपेक्षा अनादि-अनंत व भव्य की अपेक्षा सादि-सांत है ।

उपशम श्रेणी से गिरने के बाद पुनः अन्तर्मुहूर्त में वह श्रेणी प्राप्त की जा सकती है और उत्कृष्ट अर्द्ध पुद्गल परावर्त काल के बाद तो अवश्य होती है । सात का उदयस्थान ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानक में होता है । इसकी स्थिति जघन्य एक समय व उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है ।

ग्यारहवें गुणस्थानक में एक समय तक रहकर कोई मृत्यु प्राप्त कर अनुत्तर विमान में पैदा हो तो वहाँ पैदा होते ही आत्मा आठ कर्मों का वेदन करती है । अतः ग्यारहवें गुणस्थानक की अपेक्षा जघन्य स्थिति एक समय कही गई है ।

बारहवें गुणस्थान में एक अन्तर्मुहूर्त तक रह सकती है, फिर तो अवश्य ही तेरहवें गुणस्थानक को प्राप्त कर चार कर्म के उदय का अनुभव करती है ।

चार का उदयस्थान तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानक में है, क्योंकि इन दो गुणस्थानक में चार अघाति कर्म का ही उदय होता है । इसकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट स्थिति कुछ न्यून पूर्व करोड वर्ष है ।

उदीरणा स्थान

आठ का उदीरणा स्थान आयुष्य की उदीरणा समय होता है । आयुष्य

की उदीरणा पहले छह गुणस्थानक में होती है ।

आयुष्य की उदीरणा रुक जाती है, तब सात की उदीरणा होती है ।

वर्तमान आयुष्य आवलिका प्रमाण बाकी हो, तब आयुष्य की उदीरणा रुक जाती है ।

वर्तमान आयुष्य की अंतिम आवलिका के समय पहला, दूसरा, चौथा, पाँचवाँ व छठा गुणस्थान हो सकता है । इस अवस्था में तीसरा गुणस्थानक नहीं होता है, अतः तीसरे गुणस्थानक में आठ की ही उदीरणा होती है ।

छह का उदीरणास्थान सातवें गुणस्थानक से लेकर दसवें गुणस्थानक की एक आवलिका प्रमाण स्थिति बाकी हो, तब तक होता है । उस समय आयुष्य और वेदनीय की उदीरणा नहीं होती है ।

दसवें गुणस्थानक की अंतिम आवलिका में मोहनीय की भी उदीरणा रुक जाती है, वहाँ से बारहवें गुणस्थानक की अंतिम आवलिका के पूर्व तक पाँच का उदीरणा स्थान होता है ।

बारहवें गुणस्थानक की अंतिम आवलिका में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय व अंतराय की उदीरणा भी रुक जाती है । अतः तेरहवें गुणस्थानक के अंत तक दो का उदीरणा स्थान होता है ।

चौदहवें गुणस्थानक में योग का अभाव होने से नाम-गोत्र की भी उदीरणा नहीं होती है ।

ये सभी बंध, सत्ता आदि स्थान पर्याप्त संज्ञी जीव के ही होते हैं ।

10 मार्गणा के मूल भेद

गइ इंदिए अ काए, जोए वेए कसाय नाणे अ ।
संजम दंसण लेसा, भव सम्मे संनिआहारे ।।9।।

शब्दार्थ :-

गइ=गति	**संजम=**संयम
इंदिए=इन्द्रियाँ	**दंसण=**दर्शन

काए=काया	**लेसा=**लेश्या
जोए=योग	**भव=**भव्य
वेए=वेद	**सम्मे=**सम्यक्त्व
कसाय=कषाय	**सन्नि=**संज्ञी
नाणे=ज्ञान	**आहारे=**आहार

भावार्थ :- गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार-ये चौदह मार्गणाएँ हैं ।

विवेचन :- किसी भी पदार्थ को स्पष्ट रूप से समझना हो तो गति आदि मार्गणाओं के माध्यम से उसे स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है ।

प्रस्तुत गाथा में मोक्ष तत्त्व के संदर्भ में बात चल रही है । अतः मोक्ष तत्त्व को स्पष्ट रूप से जानना हो तो गति आदि 14 मार्गणाओं के माध्यम से मोक्ष तत्त्व को स्पष्ट रूप से जाना व समझा जा सकता है ।

चौदह मार्गणा स्थानों में मोक्ष की सिद्धि बतलाई है । चौदह प्रकार के मार्गणा स्थान हैं, उन सब में संसारी जीवों का समावेश हो सकता है, परंतु मुक्तात्माओं का समावेश इनमें नहीं होता है । फिर भी मोक्ष में जाने के पूर्व जिन जीवों का इन मार्गणास्थानों में समावेश होता हो, उनका यहाँ निर्देश किया जा रहा है–

1. गति मार्गणा–इसके चार भेद हैं–1) देवगति 2) मनुष्यगति 3) नरकगति और 4) तिर्यंचगति ।

2. इन्द्रिय मार्गणा–इसके पाँच भेद हैं- 1) एकेन्द्रिय 2) बेइन्द्रिय 3) तेइन्द्रिय 4) चउरिन्द्रिय 5) पंचेन्द्रिय ।

3. काय मार्गणा–इसके छह भेद हैं–1) पृथ्वीकाय 2) अप्काय 3) तेउकाय 4) वायुकाय 5) वनस्पतिकाय 6) त्रसकाय ।

4. योग मार्गणा-इसके 3 भेद हैं– 1) मनयोग 2) वचनयोग 3) काययोग ।

5. वेद मार्गणा–इसके तीन भेद हैं- 1) पुरुषवेद 2) स्त्री वेद 3) नपुंसक वेद ।

6. कषाय मार्गणा–इसके चार भेद हैं– 1) क्रोध 2) मान 3) माया 4) लोभ ।

7. ज्ञान मार्गणा–इसके आठ प्रकार हैं-1) मतिज्ञान 2) श्रुतज्ञान 3) अवधिज्ञान 4) मन:पर्यवज्ञान 5) केवलज्ञान 6) मति अज्ञान 7) श्रुत अज्ञान 8) विभंगज्ञान ।

8. संयम मार्गणा–इसके सात भेद हैं–1) सामायिक चारित्र 2) छेदोपस्थापनीय 3) परिहार विशुद्धि 4) सूक्ष्म संपराय 5) यथाख्यात चारित्र 6) देशविरति 7) सर्व विरति ।

9. दर्शन मार्गणा–इसके चार प्रकार हैं–1) चक्षुदर्शन 2) अचक्षुदर्शन 3) अवधिदर्शन 4) केवलदर्शन ।

10. लेश्या मार्गणा–इसके छह भेद हैं–1) कृष्ण लेश्या 2) नील लेश्या 3) कापोत लेश्या 4) तेजो लेश्या 5) पद्म लेश्या 6) शुक्ल लेश्या ।

11. भव्य मार्गणा–इसके दो भेद हैं–1) भव्य 2) अभव्य ।

12. सम्यक्त्व मार्गणा–इसके छह भेद हैं–1) उपशम सम्यक्त्व 2) क्षायिक सम्यक्त्व 3) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व 4) मिश्र सम्यक्त्व 5) सास्वादन सम्यक्त्व 6) मिथ्यात्व ।

13. संज्ञी मार्गणा–इसके दो भेद हैं- 1) संज्ञी (मन वाले) 2) असंज्ञी (मन रहित) ।

14. आहारी मार्गणा–इसके दो भेद हैं 1) आहारी 2) अणाहारी ।

इन मुख्य 14 मार्गणाओं के कुल 62 भेद हैं ।

11 मार्गणास्थान के विशेष भेद

सुर नर तिरि निरयगई, इग बिय तिय चउ पणिंदि छक्काया ।
भू जल जलणानिल वण तसा य मण वयणतणु जोगा ।।10।।

शब्दार्थ :-

सुर=देवता	**नर=**मनुष्य
तिरि=तिर्यंच	**निरयगई=**नरक गति
इग=एकेन्द्रिय	**बिय=**द्वीन्द्रिय
तिय=त्रीन्द्रिय	**चउ=**चतुरिन्द्रिय

पणिंदि=पंचेन्द्रिय	**छक्काया=**छह काय
भू=पृथ्वी	**जल=**पानी
जलण=अग्नि	**अनिल=**वायु
वण=वनस्पति	**तसा=**त्रस
मण=मन	**वयण=**वचन
तणु=काया	**जोगा=**योग

भावार्थ :- देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारक ये चार गतियाँ हैं। एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये पाँच जातियाँ हैं।

पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय ये छहकाय हैं। मन, वचन और काया ये तीन योग हैं।

विवेचन :- 1. गति मार्गणा :-

देव : देवगति नामकर्म के उदय से **'यह देव है'** वैसा शरीर प्राप्त होता है।

मनुष्य : मनुष्य गति नामकर्म के उदय से **'यह मनुष्य हैं'** ऐसा शरीर प्राप्त होता है।

तिर्यंच : तिर्यंच गति नामकर्म के उदय से **'यह तिर्यंच है'** ऐसा शरीर प्राप्त होता है।

4. नरक : नरकगति नाम कर्म के उदय से **'यह नरक है'** ऐसा शरीर प्राप्त होता है।

12 इन्द्रिय मार्गणा

1. एकेन्द्रिय : एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म के उदय से आत्मा को एक ही स्पर्शेन्द्रिय प्राप्त होती है। वे एकेन्द्रिय जाति के जीव कहलाते हैं।

2. द्वीन्द्रिय : द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्म के उदय से जीव को त्वचा व जीभ ये दो इन्द्रियाँ प्राप्त होती हैं, वे जीव द्वीन्द्रिय जाति के कहलाते हैं।

3. त्रीन्द्रिय : त्रीन्द्रिय जाति नाम कर्म के उदय से जीवात्मा को त्वचा, जीभ व नासिका रूप तीन इन्द्रियाँ प्राप्त होती हैं वे जीव त्रीन्द्रिय जाति के कहलाते हैं।

4. चतुरिन्द्रिय : चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म के उदय से जीव को त्वचा जीभ, नाक और आँख रूप चार इन्द्रियाँ प्राप्त होती हैं वे जीव चतुरिन्द्रिय जाति के कहलाते हैं ।

5. पंचेन्द्रिय : पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म के उदय से जीव को त्वचा, जीभ, नाक, आँख और कान रूप पाँच इन्द्रियों की प्राप्ति होती है । वे जीव पंचेन्द्रिय जाति के कहलाते हैं ।

13 काय मार्गणा के प्रभेद

1. पृथ्वीकाय : पार्थिव शरीर जो पृथ्वी से बनता है वह पृथ्वीकाय है ।

2. जलकाय : जलीय शरीर, जो जल से बनता है, वह जलकाय है ।

3. तेजसकाय : जो शरीर तेज (अग्नि) से बनता है, वह तेजस शरीर है ।

4. वायुकाय : जो शरीर वायु से बनता है, वह वायुकाय कहलाता है ।

5. वनस्पतिकाय : जो शरीर वनस्पति से बनता है, वह वनस्पतिकाय है ।

6. त्रसकाय : जो शरीर चल फिर सकता है और जो त्रस नामकर्म के उदय से प्राप्त होता है, वह त्रसकाय कहलाता है ।

14 योग मार्गणा के प्रभेद

1. मनोयोग : औदारिक, वैक्रिय या आहारक शरीर द्वारा मनो वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर जो प्रवृत्ति होती है, उसे मनोयोग कहते हैं ।

2. वचनयोग : औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीर द्वारा भाषा वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर जो प्रवृत्ति होती है, उसे वचन योग कहते हैं ।

3. काययोग : शरीरधारी आत्मा की वीर्य शक्ति के व्यापार विशेष को काययोग कहते हैं ।

वेय नरित्थि नपुंसा कसाय कोह मय माय लोभ त्ति ।
मइ सुय वहि मण केवल, विहंग मइ सुअनाण सागारा ।।11।।

शब्दार्थ :-

वेय=वेद
नपुंसा=नपुंसक
सागारा=साकार
नरित्थि=नर-स्त्री

कोह=क्रोध	**कसाय=**कषाय
माय=माया	**मय=**मद
मइ=मतिज्ञान	**लोभ=**लोभ
अवहि=अवधिज्ञान	**सुय=**श्रुतज्ञान
केवल=केवलज्ञान	**मण=**मन:पर्यवज्ञान
मइ सुअ=मति-श्रुत	**विहंग=**विभंग
	नाण=ज्ञान

भावार्थ :- पुरुष, स्त्री और नपुंसक ये तीन वेद हैं। क्रोध, मद, माया और लोभ ये चार कषाय हैं। मति-श्रुत-अवधि-मन:पर्यव-केवलज्ञान, विभंगज्ञान, मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान ये आठ साकार उपयोग हैं।

विवेचन :- 1. वेद मार्गणा के प्रभेद :

1. पुरुषवेद : जिस वेद के उदय से स्त्री के भोग की इच्छा होती है, उसे पुरुषवेद कहते हैं।

2. स्त्रीवेद : जिस वेद के उदय से पुरुष के भोग की इच्छा होती है, उसे स्त्रीवेद कहते हैं।

3. नपुंसकवेद : जिस वेद के उदय से स्त्री और पुरुष दोनों के भोग की इच्छा होती है, उसे नपुंसकवेद कहते है।

15 कषाय मार्गणा के प्रभेद

1. क्रोध : क्रोध कषाय के उदय से सामनेवाला व्यक्ति दोषित हो या निर्दोष, फिर भी उस पर गुस्सा आता है।

2. मद (मान) : जिस कषाय के उदय से बड़ों के प्रति विनम्र भाव नहीं रहता है, वह मान कषाय है।

3. माया : जिस कषाय के उदय से जीव दूसरों को ठगने की कोशिश करता है, उसे माया कहते हैं।

4. लोभ : जिस कषाय के उदय से जीवात्मा को प्राप्त सामग्री में असंतोष ही रहता है, वह लोभ कषाय है।

ज्ञान मार्गणा के प्रभेद

1. मतिज्ञान : इन्द्रियों और मन के द्वारा जो ज्ञान होता है और जो प्रायः वर्तमान कालीन होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं ।

2. श्रुतज्ञान : श्रवण से जो बोध होता है, वह श्रुतज्ञान कहलाता है, यह ज्ञान मतिपूर्वक होता है ।

3. अवधिज्ञान : इन्द्रियों और मन की सहायता बिना जो आत्म-प्रत्यक्ष होता है, जिससे रूपी पदार्थों का बोध होता है और जिसका क्षेत्र मर्यादित होता हैं, उसे अवधिज्ञान कहते हैं ।

4. मनः पर्यवज्ञान : जिस ज्ञान द्वारा ढाई द्वीप में रहे हुए संज्ञी जीवों के मनोगत भावों को जाना जाता है, उसे मनःपर्यवज्ञान कहते हैं ।

5. केवलज्ञान : जिस ज्ञान द्वारा जगत् के सभी पदार्थों के भूत-भविष्य और वर्तमान संबंधी सभी पर्यायों का बोध होता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं ।

6. मति अज्ञान : मिथ्यात्व के उदय से होने वाले विपरीत मति के उपयोग को मति अज्ञान कहते हैं । जैसे घट को एकांत नित्य या एकांत अनित्य माननाऊ।

7. श्रुत-अज्ञान : मिथ्यात्व के उदय से सहचरित श्रुतज्ञान को श्रुत- अज्ञान कहा है । सम्यक्त्व के अभाव में होनेवाला नौ पूर्वों का ज्ञान भी श्रुत- अज्ञान रूप ही है ।

8. विभंगज्ञान : मिथ्यात्व से युक्त होने वाले अवधिज्ञान को विभंग ज्ञान कहते हैं ।

विभंगज्ञान के कारण ही शिव राजर्षि ने सात द्वीप, सात समुद्र की दुनिया का निश्चय किया था ।

सम्यग्दृष्टि के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं, क्योंकि वह हर पदार्थ को अनेकांत दृष्टि से देखता है, जबकि मिथ्यादृष्टि का ज्ञान अज्ञान कहलाता है, क्योंकि उसके पास एकांत दृष्टि रही होती है।

मनःपर्यवज्ञान व केवलज्ञान नियम से सम्यग्दृष्टि को ही होते हैं, इस कारण उनके विपरीत भेद नहीं हैं ।

पहले तीन ज्ञान मिथ्यादृष्टि को भी हो सकते हैं, अतः वे अज्ञान स्वरूप भी हैं ।

सामाइय छेय परिहार, सुहुम अहक्खाय देस जय अजया ।
चक्खु अचक्खु ओही, केवलदंसण अणागारा ।।12।।

शब्दार्थ :-

सामाइय=सामायिक
परिहार=परिहारविशुद्धि
अहक्खाय=यथाख्यात
जय=विरति
चक्खु=चक्षु
ओही=अवधि
अणागारा=अनाकार
छेय=छेदोपस्थापनीय
सुहुम=सूक्ष्म संपराय
देस=देश
अजया=अविरति
अचक्खु=अचक्षु
केवलदंसण=केवलदर्शन

भावार्थ : सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात, देशविरति और अविरति ये सात संयम मार्गणा के भेद हैं ।

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन ये चार अनाकार उपयोग हैं ।

विवेचन :- 1. संयम मार्गणा के प्रभेद :–

1. सामायिक : जिस संयम में समभाव की प्राप्ति हो वह सामायिक संयम कहलाता है । भरत और ऐरावत क्षेत्र में प्रथम और अंतिम तीर्थंकर के शासन काल में दीक्षा ग्रहण करते समय सर्वप्रथम यही संयम दिया जाता है । इसकी काल-मर्यादा बड़ी दीक्षा तक है । यह सामायिक इत्वरकथिक है ।

यावत्कथिक सामायिक :– भरत-ऐरावत क्षेत्र में बीच के 22 तीर्थंकरों के शासन में तथा महाविदेह क्षेत्र में दीक्षा ग्रहण करते समय ही चार महाव्रतों के साथ जीवन पर्यंत सामायिक की प्रतिज्ञा होती है ।

2. छेदोपस्थापनीय संयम :– प्रथम संयम पर्याय को छेदकर फिर से व्रत का आरोपण करना छेदोपस्थापनीय कहलाता है । यह संयम महाव्रतों के आरोपण समय बड़ी दीक्षा के समय होता है । यह संयम पहले व अंतिम तीर्थंकर के शासन में होता है । बाईस तीर्थंकरों के शासन में तो दीक्षा ग्रहण

करते समय ही महाव्रतों का आरोपण हो जाने से छेदोपस्थापनीय संयम नहीं होता है ।

3. परिहारविशुद्धि संयम : इस संयम में परिहारविशुद्धि नाम का तप होता है ।

नौ साधुओं का एक गण होता है, जिसमें चार तपस्वी, चार परिचारक तथा एक वाचनाचार्य होता है । जो तपस्वी हैं वे गर्मी में जघन्य एक, मध्यम दो व उत्कृष्ट तीन उपवास करते हैं, सर्दी में 2-3 व 4 उपवास एवं वर्षाऋतु में 3-4 व 5 उपवास करते हैं । पारणे के दिन अभिग्रह सहित आयंबिल करते हैं । यह क्रम छह मास तक चलता है ।

दूसरे छह मास में जो परिचारक थे, वे तपस्वी बनते हैं और जो तपस्वी थे, वे परिचारक बनते हैं ।

तीसरे छह मास में वाचनाचार्य तपश्चर्या करते हैं और शेष आठ में से एक वाचनाचार्य और सात परिचारक बनते हैं ।

इस प्रकार यह तप 18 मास में पूर्ण होता है । तप की समाप्ति के बाद या तो वे जिनकल्प स्वीकार करते हैं अथवा पुनः गच्छ में प्रवेश करते हैं । इस संयम के अधिकारी के पास साढ़े नौ पूर्वों का ज्ञान होता है । इसका ग्रहण तीर्थंकर या तीर्थंकर के शिष्य के पास होता है ।

4. सूक्ष्म संपराय संयम :– जिस संयम में कषाय का सूक्ष्म अंश रहता है, वह सूक्ष्म संपराय संयम है । इसमें सिर्फ लोभ का उदय होता है, अन्य का नहीं । यह संयम दसवें गुणस्थानक वाले को होता है ।

5. यथाख्यात चारित्र :– जिसमें कषाय का लेश भी उदय न हो, उसे यथाख्यात चारित्र कहते हैं । इसके दो भेद हैं–

1. छाद्मस्थिक यथाख्यात संयम-ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थानक वालों को होता है । ग्यारहवें गुणस्थानक में कषाय का उदय नहीं होता है, सिर्फ सत्ता होती है । परंतु बारहवें में तो कषाय की सत्ता भी नहीं होती है ।

2. अछाद्मस्थिक यथाख्यात–यह संयम तेरहवें गुणस्थानक में रहे केवली को होता है ।

सयोगी केवली का संयम सयोगी यथाख्यात और अयोगी केवली का अयोगी यथाख्यात होता है ।

6. देशविरति संयम :– आरंभ-समारंभ से कुछ अंश में निवृत्त होना उसे देशविरति संयम कहते हैं । इसके अधिकारी गृहस्थ होते हैं ।

7. अविरति संयम :– किसी प्रकार के संयम को स्वीकार न करना अविरति कहलाता है । यह पहले से चौथे गुणस्थानक तक होता है ।

16 दर्शन मार्गणा के चार भेद

1. चक्षु दर्शन :– चक्षु इन्द्रिय के द्वारा जो सामान्य बोध होता है, उसे चक्षु दर्शन कहते हैं ।

2. अचक्षु दर्शन :– चक्षु को छोड़ अन्य इन्द्रियों व मन से होनेवाले सामान्य बोध को अचक्षुदर्शन कहते हैं ।

3. अवधि दर्शन :– अवधिज्ञानी को इन्द्रियों की सहायता बिना जो सामान्य बोध होता है, उसे अवधिदर्शन कहते हैं ।

4. केवल दर्शन :– संपूर्ण द्रव्य पर्याय को सामान्य रूप से विषय करनेवाला केवलदर्शन कहलाता है ।

17 लेश्याओं के भेद

किण्हा नीला काऊ तेऊ पम्हा य सुक्क भव्वियरा ।
वेय खइगुवसममिच्छमीस सासाण संनियरे ।।13।।

शब्दार्थ :-

किण्हा=कृष्ण	**नीला**=नील
काऊ=कापोत	**तेऊ**=तेज
पम्हा=पद्म	**सुक्क**=शुक्ल
भव्वियरा=भव्य अभव्य	**वेय**=वेदक
खइग=क्षायिक	**उवसम**=उपशम
मिच्छ=मिथ्यात्व	**मीस**=मिश्र
सासाण=सास्वादन	**संनियरे**=संज्ञि-असंज्ञि

भावार्थ : कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल ये छह लेश्याएँ है । भव्यत्व-अभव्यत्व ये भव्यत्व मार्गणी के भेद हैं ।

वेदक, क्षायिक, उपशम, मिथ्यात्व, मिश्र और सास्वादन ये सम्यक्त्व मार्गणा के भेद हैं, संज्ञि-असंज्ञि ये संज्ञी मार्गणा के भेद हैं ।

विवेचन :- लेश्याओं के प्रभेद :–

1. कृष्ण लेश्या :– काजल के समान कृष्ण वर्णीय पुद्गलों के संबंध से आत्मा में ऐसा परिणाम पैदा होता है, जिससे जीव हिंसादि तीव्र पापों में प्रवृत्त होता है, मन, वचन और काया पर संयम नहीं रहता है । गुण-दोष की परीक्षा किए बिना ही प्रवृत्ति करता है । इस लेश्या में मन के परिणाम अत्यंत क्रूर व निर्दयी होते हैं ।

2. नील लेश्या :– अशोक वृक्ष के समान नील वर्णवाले पुद्गलों के संबंध से आत्मा में ऐसा परिणाम होता है कि जिससे आत्मा में ईर्ष्या, असहिष्णुता, माया-कपट आदि दोष पैदा होते हैं । पाप प्रवृत्ति में व्यक्ति निर्लज्ज रहता है । विषयों की लालसा तीव्र हो जाती है । रस-लोलुपता रहती है और पौद्गलिक सुख का आकर्षण ज्यादा होता है ।

3. कापोत लेश्या :–कृष्ण व लाल रंग के मिश्रण से कबूतर के गले के रंग के समान वर्णवाले पुद्गलों के संबंध से आत्मा में ऐसा परिणाम पैदा होता है कि उस व्यक्ति के बोलने व काम करने में वक्रता ही होती है, व्यवहार में सरलता नहीं । दूसरों को कष्ट हो, ऐसी भाषा व व्यवहार होता है ।

4. तेजोलेश्या : तोते की चोंच समान रक्तवर्ण के पुद्गलों के संसर्ग से आत्मा में ऐसा परिणाम पैदा होता है कि उस व्यक्ति में सरलता पैदा होती है । व्यवहार में नम्रता होती है । चपलता-चंचलता दूर हो जाती है । धर्म में रुचि व दृढ़ता आती है । आत्मा का हित करने का भाव पैदा होता है ।

5. पद्मलेश्या : हल्दी के समान पीले रंग के लेश्या पुद्गलों के संसर्ग से आत्मा में ऐसे परिणाम पैदा होते हैं कि जिसके फलस्वरूप क्रोध आदि कषायों के परिणाम मंद हो जाते हैं, चित्त प्रशांत हो जाता है । इन्द्रियों में संयम आता है ।

6. शुक्ललेश्या : गाय के दूध के समान एकदम स्वच्छ पुद्गलों के संसर्ग से आत्मा में ऐसे शुभ परिणाम पैदा होते हैं कि जीवन में आर्त व रौद्र

ध्यान बंद हो जाता है और धर्मध्यान व शुक्ल ध्यान के द्वार खुल जाते हैं । कषाय शांत हो जाते हैं । आत्मा में नवीन गुणों का प्रादुर्भाव होता है जिसके फलस्वरूप आत्मा वीतरागता के सन्मुख आगे बढ़ती है ।

18 भव्यत्व मार्गणा के प्रभेद

1. भव्यत्व :–अनादि काल से आत्मा में रहा ऐसा पारिणामिक भाव, जिसके फलस्वरूप आत्मा में मोक्षगमन की योग्यता होती है ।

2. अभव्यत्व :–अनादि काल से आत्मा में रहा ऐसा पारिणामिक भाव, जिसके फलस्वरूप आत्मा कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं करती ।

19 सम्यक्त्व मार्गणा के प्रभेद

1. औपशमिक सम्यक्त्व :- अनंतानुबंधी चार कषाय और दर्शन मोहनीय के उपशम से आत्मा में पैदा होने वाले तत्त्वरुचि रूप परिणाम को औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं । इसके दो भेद हैं :–

A. ग्रंथिभेदजन्य : यह सम्यक्त्व अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को सर्व प्रथम बार ग्रंथि-भेद करते समय होता है ।

B. उपशम श्रेणी भावी : उपशम श्रेणी पर चढ़ते समय यह सम्यक्त्व चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें व आठवे गुणस्थानक में प्राप्त होता है ।

इस सम्यक्त्व की हाजरी में आयुष्य का बंध, मृत्यु, अनंतानुबंधी कषायों का बंध व उदय नहीं होता है । इस सम्यक्त्व से च्युत होने पर सास्वादन भाव में यह सब होता है ।

2. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व :- अनंतानुबंधी कषाय और दर्शन मोहनीय के क्षयोपशम से आत्मा में प्रकट होनेवाले तत्त्वरुचि रूप परिणाम को क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते है ।

3. क्षायिक सम्यक्त्व :- अनंतानुबंधी चार कषाय और दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृति के संपूर्ण क्षय से आत्मा में प्रकट होनेवाले तत्त्वरुचि रूप परिणाम को क्षायिक सम्यक्त्व कहते है ।

आयुष्य का बंध नहीं हुआ हो तो इस सम्यक्त्व को प्राप्त करनेवाली

आत्मा उसी भव में मोक्ष में जाती है ।

1. पहले आयुष्य बाँध लिया हो तो वह आत्मा तीसरे या चौथे भव में मोक्ष प्राप्त करती है ।

4. सास्वादन सम्यक्त्व : उपशम सम्यक्त्व से पतित होकर मिथ्यात्व की ओर अभिमुख बनी आत्मा को सास्वादन सम्यक्त्व होता है । इसकी जघन्य स्थिति एक समय और उत्कृष्ट स्थिति छह आवलिका है ।

5. मिश्र सम्यक्त्व : तत्त्व और अतत्त्व में समान रुचि रूप परिणाम को मिश्र सम्यक्त्व कहते हैं । यह सम्यक्त्व तीसरे गुणस्थानकवर्ती जीवों के होता है । इसका जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त का है ।

6. मिथ्यात्व : मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय में तत्त्व में अरुचि और अतत्त्व में रुचि रूप जो विपरीत परिणाम होता है उसे मिथ्यात्व कहते हैं । यह मिथ्यात्व पहले गुणस्थानक में रहे जीवों के होता है ।

20 संज्ञी मार्गणा के भेद

1. संज्ञी :- जिसमें विशिष्ट मन शक्ति अर्थात् दीर्घकालिकी संज्ञा हो, वे संज्ञी कहलाते हैं ।

2. असंज्ञी : मन की शक्ति के अभाववाले जीव असंज्ञी कहलाते हैं ।

21 मार्गणाओं में जीवस्थान

आहारेयर भेया सुर निरय विभंग मइसुओहि दुगे ।
सम्मत्ततिगं पम्हा, सुक्कासन्नीसु सन्निदुगं ।।14।।

शब्दार्थ :-

आहारेयर=आहारक अनाहारक	**भेया=**भेद
सुरनिरय=देव-नरक	**विभंग=**विभंग्ज्ञान
मइसुओहि=मति-श्रुत-अवधि	**दुगे=**द्विक
सम्मत्त=सम्यक्त्व	**तिगं=**त्रिक
पम्हा=पद्म	**सुक्का=**शुक्ल
सन्नीसु=संज्ञी में	**सन्निदुगं=**संज्ञिद्विक

भावार्थ : आहारक मार्गणा के आहारक और अनाहारक ये दो भेद हैं ।

देवगति, नरकगति, विभंगज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, अवधिदर्शन, सम्यक्त्वत्रिक (औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक) दो लेश्याएँ (पद्म और शुक्ल) और संज्ञित्व इन तेरह मार्गणाओं में अपर्याप्त संज्ञी और पर्याप्त संज्ञी ये दो जीवस्थान होते हैं ।

विवेचन :-

22 आहारक मार्गणा के प्रभेद

1. आहारक : जो जीव ओज, लोम और कवल इन तीन में से किसी प्रकार का आहार लेता है, वह आहारक कहलाता है ।

2. अनाहारक :– जो जीव इन तीनों में से किसी प्रकार का आहार ग्रहण नहीं करता है, वह अनाहारक कहलाता है ।

23 14 मार्गणाओं में 14 जीवस्थान

देवगति आदि तेरह मार्गणाओं में सिर्फ पर्याप्त, अपर्याप्त संज्ञी दो ही जीवस्थान होते हैं ।

◆ देवगति व नरक गति में सभी संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव ही होते हैं । वे पर्याप्त या अपर्याप्त हो सकते हैं, असंज्ञी जीव उनमें नहीं होते हैं ।

◆ असंज्ञी जीव को विभंगज्ञान नहीं होता है, अतः उसमें भी संज्ञी पर्याप्त-अपर्याप्त दो ही जीवस्थान होते हैं ।

◆ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, अवधिदर्शन, औपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व तथा पद्म व शुक्ल लेश्या भी संज्ञी पर्याप्त-अपर्याप्त में ही होती है । इसका कारण यह है कि असंज्ञी जीव को तीनों प्रकार के सम्यक्त्व नहीं होते हैं । सम्यक्त्व के अभाव में मति-श्रुत और अवधि ज्ञान भी नहीं होता है ।

पद्म व शुक्ल लेश्या भी संज्ञी जीवों को ही होती है ।

अपर्याप्त अवस्था में मति, श्रुत व अवधि द्विक इसलिए माने गए हैं कि तीर्थंकर जैसी कई आत्माएँ ज्ञान सहित जन्म लेती हैं तब पूर्वावस्था का क्षायिक सम्यक्त्व या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व साथ में लेकर आती हैं, अतः

उन्हें ज्ञान भी होता है ।

देवगति आदि तेरह मार्गणाओं में अपर्याप्त संज्ञी का अर्थ करण अपर्याप्त से है लब्धि अपर्याप्त से नहीं क्योंकि देव व नरक गति में कोई भी जीव लब्धि अपर्याप्त के रूप में पैदा ही नहीं होता है ।

तमसंनि अपज्जजुयं, नरे सबायर अपज्ज तेऊए ।
थावर इगिंदि पढमा, चउ बार असन्नि दु दु विगले ।।15।।

शब्दार्थ :-

तं=वह
अपज्जजुयं=अपर्याप्त युक्त
सबायर=बादर सहित
तेऊए=तेजो लेश्या में
इगिंदि=एकेन्द्रिय
चउ=चार
असन्नि=असंज्ञी
विगले=विकलेन्द्रिय में
असंनि=असंज्ञी
नरे=मनुष्य गति में
अपज्ज=अपर्याप्त
थावर=स्थावर
पढमा=प्रथम
बार=बारह
दु दु=दो दो

भावार्थ : मनुष्य गति में पूर्वोक्त संज्ञि-द्विक (पर्याप्त-अपर्याप्त) तथा अपर्याप्त असंज्ञी ये तीन जीवस्थान हैं ।

तेजोलेश्या में बादर अपर्याप्त और संज्ञी द्विक ये तीन जीवस्थान हैं ।

पाँच स्थावर और एकेन्द्रिय में पहले चार (अपर्याप्त सूक्ष्म-पर्याप्त सूक्ष्म, अपर्याप्त बादर व पर्याप्त बादर) जीवस्थान हैं ।

असंज्ञि मार्गणा में संज्ञि-द्विक सिवाय के बारह जीवस्थान हैं ।

विकलेन्द्रिय में दो-दो (पर्याप्त अपर्याप्त) जीवस्थान हैं ।

विवेचन :-

मनुष्य के मुख्य दो भेद हैं-गर्भज व संमूर्च्छिम । सभी गर्भज मनुष्य संज्ञी होते हैं और वे पर्याप्त व अपर्याप्त दोनों प्रकार के होते हैं । परंतु संमूर्च्छिम मनुष्य लब्धि अपर्याप्त ही होते हैं और वे असंज्ञी ही होते हैं ।

संमूर्च्छिम मनुष्य ढाई द्वीप में रहे संज्ञी मनुष्य के मल-मूत्र, शुक्र, रक्त आदि अशुचि स्थानों में पैदा होते हैं। उनका आयुष्य अन्तर्मुहूर्त का ही होता है और वे स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करने के पहले ही मर जाते हैं, अतः अपर्याप्त ही होते हैं। अतः मनुष्यगति में तीन जीवस्थान हुए।

तेजोलेश्या :- तेजोलेश्या पर्याप्त-अपर्याप्त संज्ञी जीवों में तो होती ही है, परंतु भवनपति, व्यंतर आदि जीव जब तेजोलेश्या के साथ मरकर जब पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय रूप एकेन्द्रिय में पैदा होते हैं तब उन्हें करण अपर्याप्त अवस्था में कुछ समय तक तेजोलेश्या भी होती है, अतः एकेन्द्रिय अपर्याप्त अवस्था में भी तेजो लेश्या मानी गई है।

एकेन्द्रिय और पृथ्वीकाय आदि पाँच स्थावर काय रूप छह मार्गणाओं में पहले चार जीवस्थान माने गए हैं।

असंज्ञिमार्गणा में बारह जीवस्थान होते हैं, क्योंकि चौदह में से दो जीवस्थान ही संज्ञी हैं।

विकलेन्द्रिय में पर्याप्त व अपर्याप्त दो-दो जीवस्थान हैं, अतः विकलेन्द्रिय मार्गणा मे 2-2 जीव स्थान हैं।

दस चरम तसे अजया-हारग तिरि तणु कसाय दु अनाणे।
पढम ति लेसा भवियर अचक्खु नपुमिच्छि सव्वेवि ॥16॥

शब्दार्थ :-

दस=दस	**चरम=**अंतिम
तसे=त्रस में	**अजया=**अविरति
आहारग=आहारक	**तिरि=**तिर्यंच
तणु=काय	**कसाय=**चार कषाय
दु अनाणे=दो अज्ञान	**पढम=**प्रथम
ति लेसा=तीन लेश्याएँ	**भवियर=**भव्यत्व-अभव्यत्व
अचक्खु=अचक्षु दर्शन	**नपु=**नपुंसक
मिच्छि=मिथ्यात्व	**सव्वे वि=**सभी

भावार्थ : त्रसकाय में अंतिम दस जीवस्थान हैं। अविरति, आहारक,

तिर्यंचगति, काय योग, चार कषाय, मति-श्रुत दो अज्ञान, कृष्ण आदि पहली तीन लेश्याएँ, भव्यत्व, अभव्यत्व, अचक्षुदर्शन, नपुंसकवेद और मिथ्यात्व इन अठारह मार्गणाओं में सभी जीवस्थान होते हैं ।

विवेचन :-

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्त तथा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त ये चार स्थावर कहलाते हैं, इसके सिवाय के सभी दस स्थान त्रसकाय में हैं ।

अविरति आदि अठारह मार्गणाओं में सभी जीवस्थान होते हैं, क्योंकि इन सभी जीवों में सभी मार्गणाएँ घट सकती हैं ।

मिथ्यात्व भी सभी जीवस्थानों में कहा गया है ।

पजसन्नी केवलदुग संजय मणनाण देस मण मीसे ।
पण चरम पज्ज वयणे, तिय छ व पज्जियर चक्खुंमि ।।17।।

शब्दार्थ :-

पजसन्नी=पर्याप्त संज्ञी
संजय=सामायिक
देस=देशविरति
मीसे=मिश्र सम्यक्त्व
चरम=अंतिम
तिय=त्रिक
पज्जियर=पर्याप्त-अपर्याप्त
केवलदुग=केवलद्विक
मणनाण=मनःपर्यवज्ञान
मण=मनोयोग
पण=पाँच
पज्ज=पर्याप्त
वयणे=वचनयोग में
छ व=अथवा छह
चक्खुंमि=चक्षुदर्शन में

भावार्थ : केवलद्विक (केवलज्ञान और केवलदर्शन) सामायिक आदि पाँच संयम, मनःपर्यवज्ञान, देशविरति, मनोयोग और मिश्र सम्यक्त्व इन ग्यारह मार्गणाओं में सिर्फ पर्याप्त संज्ञी जीवस्थान है ।

वचनयोग में अंतिम पाँच-पर्याप्त द्वीन्द्रिय, पर्याप्त त्रीन्द्रिय, पर्याप्त चतुरिन्द्रिय, पर्याप्त असंज्ञि पंचेन्द्रिय, पर्याप्त संज्ञि पंचेन्द्रिय जीवस्थान हैं ।

चक्षुदर्शन में तीन पर्याप्त चतुरिन्द्रिय, असंज्ञि पंचेन्द्रिय और संज्ञि पंचेन्द्रिय हैं और मतांतर से चतुरिन्द्रिय, संज्ञि-असंज्ञि पंचेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों हैं ।

विवेचन :-

केवलद्विक आदि ग्यारह मार्गणाओं में संज्ञी पर्याप्त जीवस्थान ही माना गया है, क्योंकि पर्याप्तसंज्ञी को छोड़कर अन्य जीवों में सर्वविरति-देशविरति का संभव नहीं है । अतः संज्ञी को छोड अन्य जीवों में केवलज्ञान आदि मार्गणाएँ नहीं घट सकती हैं ।

पर्याप्त संज्ञी को छोड़ अन्य जीवों में द्रव्य मन का भी संबंध नहीं होने से मनोयोग व मिश्र सम्यक्त्व भी नही घट सकता है ।

द्वीन्द्रिय आदि जब स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण कर लेते हैं, तभी उनमें वचनयोग संभव है । इसी कारण वचनयोग में द्वीन्द्रिय आदि पाँच जीवस्थान हैं ।

चतुरिन्द्रिय व असंज्ञि-संज्ञि-पंचेन्द्रिय इन तीन जीवों के ही आँखें होती हैं, अतः उन्हीं में चक्षुदर्शन संभव है ।

इसमें दो मत हैं । एक मत के अनुसार स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण होने के बाद ही चक्षुदर्शन माना गया है ।

दूसरे मत के अनुसार अपर्याप्त अवस्था में भी इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण होने के बाद चक्षुदर्शन माना गया है अतः इस मत से पर्याप्त अपर्याप्त के कुल छह स्थान माने गए हैं ।

थी नर पणिंदि चरम चउ, अणाहारे दु संनि छ अपज्जा ।
ते सुहुम अपज्ज विणा, सासणि इत्तो गुणे वुच्छं ।।18।।

शब्दार्थ :-

थी=स्त्रीवेद
नर=पुरुष वेद
पणिंदि=पंचेन्द्रिय
चरम चउ=अंतिम चार
अणाहारे=अनाहारक में
दु=दो

संनि=संज्ञी	**छ=**छह
अपज्जा=अपर्याप्त	**ते=**वे
सुहुम अपज्ज=सूक्ष्म अपर्याप्त	**विणा=**बिना
सासणि=सास्वादन में	**इत्तो=**आगे
गुणे=गुणस्थान	**वुच्छं=**कहूंगा

भावार्थ : स्त्रीवेद, पुरुषवेद और पंचेन्द्रिय जाति में अंतिम चार (पर्याप्त-अपर्याप्त असंज्ञि पंचेन्द्रिय, पर्याप्त-अपर्याप्त संज्ञि पंचेन्द्रिय) जीव-स्थान हैं ।

अनाहारक में अपर्याप्त-अपर्याप्त दो संज्ञी सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञि पंचेन्द्रिय ये छह अपर्याप्त इस प्रकार कुल आठ जीवस्थान हैं ।

सास्वादन सम्यक्त्व में इन आठ में से सूक्ष्म अपर्याप्त को छोड़ सात जीव स्थान हैं ।

अब आगे गुणस्थान कहेंगे ।

विवेचन :-

स्त्रीवेद आदि तीन मार्गणाओं में असंज्ञी पंचेन्द्रिय आदि जो चार जीवस्थान कहे गए हैं, वे करण अपर्याप्त ही लेने के हैं, क्योंकि लब्धि अपर्याप्त को तो नपुंसक वेद का ही उदय होता है ।

अनाहारक मार्गणा में 7 अपर्याप्त को लिया है । वे जब विग्रह गति में होते हैं, तब एक, दो या अधिकतम तीन समय तक अणाहारी होते हैं, उस अपेक्षा से गिना है तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय को अनाहारक कहा है वह इस प्रकार घटता हैं– केवली समुद्घात के समय तीसरे चौथे और पाँचवें समय में कार्मण काययोगी होने से उस समय आहार ग्रहण नहीं करते हैं ।

सास्वादन सम्यक्त्व में 7 जीवस्थान कहे हैं । औपशमिक सम्यक्त्व का वमन करनेवाली आत्मा सूक्ष्म एकेन्द्रिय में पैदा नहीं होती है अतः उसमें सास्वादन सम्यक्त्व संभव नहीं है, परंतु वह आत्मा बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय

त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञि पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय में जन्म पा सकती है, अतः उसमें अपर्याप्त अवस्था में सास्वादन सम्यक्त्व हो सकता है ।

औपशमिक सम्यक्त्व संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव ही प्राप्त कर सकते हैं, अतः संज्ञी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त अवस्था में सास्वादन सम्यक्त्व कहा है ।

24 मार्गणाओं में गुणस्थान

पण तिरि चउ सुर नरए, नर संनि पणिंदि भव्व तसि सव्वे ।
इग विगल भूदगवणे, दु दु एगं गइ तस अभव्वे ।।19।।

शब्दार्थ :-

पण=पांच	**तिरि=**तिर्यंच
चउ=चार	**सुरनरए=**देव-नरक में
नर=मनुष्य	**संनि=**संज्ञी
पणिंदि=पंचेन्द्रिय	**भव्व=**भव्य
तसि=त्रस	**सव्वे=**सर्व
इग=एकेन्द्रिय	**विगल=**विकलेन्द्रिय
भूदग=पृथ्वी, अप्	**वणे=**वनस्पति में
दु दु=दो दो	**एगं=**एकेन्द्रिय
गइतस=गतित्रस	**अभव्वे=**अभव्य में

भावार्थ : तिर्यंचगति में पाँच गुणस्थान होते हैं । देव व नरक गति में चार गुणस्थान होते हैं । मनुष्यगति, संज्ञी, पंचेन्द्रिय जाति, भव्य और त्रसकास इन पाँच में सभी गुणस्थान हैं ।

एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में पहले दो गुणस्थान होते हैं ।

गति त्रस और अभव्य में पहला ही गुणस्थान है ।

विवेचन :-

तिर्यंच गति में पाँच ही गुणस्थान हैं क्योंकि वहाँ जाति स्वभाव से ही

सर्वविरति आदि गुणस्थान नहीं होते हैं ।

देव और नरक में चार ही गुणस्थान हैं, क्योंकि वहाँ विरति का सर्वथा अभाव है, अतः आगे के गुणस्थान संभव ही नहीं हैं । मनुष्य, संज्ञी आदि पाँच में एक से चौदह सभी गुणस्थान हैं, क्योंकि मनुष्य ही मोक्ष में जा सकता है ।

एकेन्द्रिय पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय तथा विकलेन्द्रिय में दो ही गुणस्थान होते हैं ।

उपशम सम्यक्त्व वाला सम्यक्त्व का वमंन करते समय जब एकेन्द्रिय में जन्म लेता है, तब अपर्याप्त अवस्था में दूसरा गुणस्थान होता है ।

तेउकाय और वायुकाय के जीव गतित्रस भी कहलाते हैं, वे न तो उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं और न ही उपशम सम्यक्त्व से च्युत होनेवाला वहाँ जन्म लेता है, अतः वहाँ पहला ही गुणस्थान कहा है ।

अभव्य कभी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं करता है, अतः उसे मिथ्यात्व को छोड़ अन्य कोई गुणस्थान नहीं होते हैं ।

वेय ति कसाय नव दस लोभे चउ अजय दु ति अनाण तिगे ।
बारस अचक्खु चक्खुसु पढमा अहखाइ चरम चउ ।।20।।

शब्दार्थ :-

वेय ति=तीन वेद	**कसाय**=कषाय
नव=नौ	**दस**=दस
लोभे=लोभ में	**अजय**=अंविरति में
दु ति=दो तीन	**अनाणतिगे**=अज्ञानत्रिक में
बारस=बारह	**अचक्खु**=अचक्षुदर्शन
चक्खुसु=चक्षु दर्शन में	**पढमा**=प्रथम
अहखाइ=यथाख्यात में	**चरम चउ**=अंतिम चार

भावार्थ : तीन वेद और तीन कषाय में पहले नौ गुणस्थान, लोभ में दस तथा अविरति में चार गुणस्थान होते हैं । तीन अज्ञान में पहले दो या तीन गुणस्थान, चक्षु व अचक्षु दर्शन में पहले बारह और यथाख्यात चारित्र में अंतिम चार गुणस्थान होते हैं ।

विवेचन :-

तीन वेद व तीन कषाय में जो गुणस्थान कहे गए हैं, वे उनके उदय की अपेक्षा से समझने चाहिए, क्योंकि उनकी सत्ता तो ग्यारहवें गुणस्थान तक होती है ।

नौवें गुणस्थान के अंतिम समय में तीन वेद और तीन कषाय या तो क्षीण हो जाते हैं या उपशांत । उनका उदय आगे के गुणस्थान में नहीं होता है ।

संज्वलन लोभ का उदय दसवें गुणस्थान तक होता है । उसकी सत्ता ग्यारहवें गुणस्थान तक होती है । अविरति में चार ही गुणस्थान होते हैं, क्योंकि आगे के गुणस्थानकों में विरति अवश्य होती है ।

अज्ञानत्रिक में दो मत

1. पहला-दूसरा गुणस्थानक : तीसरे गुणस्थानक में सम्यक्त्व का अभाव होने से भले ही पूर्ण ज्ञान न हो परंतु ज्ञान का कुछ अंश रहता है, अतः मिश्रदृष्टि में ज्ञान का अंश मानने के कारण अज्ञानत्रिक में दो ही गुणस्थान कहे है ।

2. पहले-तीन गुणस्थानक : इस मत के अनुसार सम्यक्त्व के अभाव में हुए ज्ञान को अज्ञान ही माना जाता है, इस कारण अज्ञानत्रिक में तीन गुणस्थानक माने हैं ।

चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन में बारह गुणस्थानक हैं क्योंकि ये दोनों क्षायोपशमिक हैं । तेरहवें व चौदहवें गुणस्थानक में क्षायिक भाव ही होता है, क्षायोपशमिक नहीं ।

मोहनीय कर्म का उदय सर्वथा रुकने पर ही यथाख्यात चारित्र होता है । ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थानक में मोहनीय के उदय का अभाव होने से वहाँ यथाख्यात चारित्र होता है ।

मणनाणि सग जयाई, समइयछेय चउ दुन्नि परिहारे ।
केवल दुगि दो चरमा, जयाइ नव मइसु ओहिदुगे ।।21।।

शब्दार्थ :-

मणनाणि=मन:पर्यव ज्ञान में
जयाई=
छेय=छेदोपस्थापनीय
दुन्नि=दो
केवलदुगि=केवलद्विक में
चरमा=चरम
नव=नौ
दुगे=दो
सग=सात
समइय=सामायिक
चउ=चार
परिहारे=परिहार विशुद्धि में
दो=दो
जयाइ=अविरति आदि
मइसुओहि=मति, श्रुत-अवधि

भावार्थ : मन:पर्यवज्ञान में प्रमत्त संयत आदि 7 गुणस्थानक, सामायिक और छेदोपस्थापनीय में प्रमत्त संयत आदि चार गुणस्थानक, परिहार विशुद्धि संयम में प्रमत्त संयत आदि दो गुणस्थानक, केवलद्विक में अंतिम दो गुणस्थानक, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञान-अवधिदर्शन में अविरत सम्यग्दृष्टि आदि नौ गुणस्थानक होते हैं ।

विवेचन :-

मन:पर्यवज्ञान की प्राप्ति सातवें गुणस्थान में होती है । इसकी प्राप्ति के बाद छठे से बारह तक 7 गुणस्थान हो सकते हैं ।

सामायिक और छेदोपस्थापनीय संयम छठे आदि चार गुणस्थानक में होते हैं । परिहारविशुद्धि संयम छठे व सातवें गुणस्थानक में होता है । इस संयम में रहकर उपशम या क्षपकश्रेणी नहीं होती है ।

केवलज्ञान व केवलदर्शन दोनों क्षायिक भाव के होने से तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानक में होते हैं । मतिज्ञान-श्रुतज्ञान और अवधिद्विक चौथे से बारहवें इन नौ गुणस्थानक में होते हैं । पहले तीन गुणस्थानक में मति आदि अज्ञान रूप होते हैं और तेरहवें चौदहवें में क्षायिक भाव के ज्ञान-दर्शन होने से वहाँ भी इनका अभाव होता है ।

अड उवसमि चउ वेयगि, खइए इक्कार मिच्छ तिगि देसे ।
सुहुमे य सठाणं तेर, स जोग आहार सुक्काए ।।22।।

शब्दार्थ :-

अड=आठ
चउ=चार
खइए=क्षायिक
मिच्छि=मिथ्यात्व
देसे=देशविरति में
सठाणं=स्वस्व गुणस्थान
आहार=आहारक
उवसमि=उपशम सम्यक्त्व में
वेयगि=वेदक सम्यक्त्व में
इक्कार=ग्यारह
तिगि=त्रिक
सुहुमे=सूक्ष्म संपराय मे
तेर=तेरह
सजोग=स्वयोग्य
सुक्काए=शुक्ल लेश्या में

भावार्थ : उपशम सम्यक्त्व में चौथे से ग्यारहवें गुणस्थानक तक आठ, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में चौथे से सातवें तक चार गुणस्थानक, क्षायिक सम्यक्त्व में चौथे से चौदह, ग्यारह गुणस्थानक हैं ।

मिथ्यात्व त्रिक (मिथ्यादृष्टि, सास्वादन व मिश्र दृष्टि) देशविरति और सूक्ष्म संपराय में अपना-अपना एक ही गुणस्थानक है ।

योग, आहारक और शुक्ल लेश्या मार्गणा में पहले तेरह गुणस्थानक है ।

विवेचन :-

उपशम सम्यक्त्व के आठ गुणस्थान कहे गए हैं ग्रंथिभेदजन्य पहली बार उपशम सम्यक्त्व पाते समय चौथे आदि चार गुणस्थानक तथा उपशम श्रेणी पर चढ़ते समय आठवें आदि चार गुणस्थानक होते हैं ।

वेदक अर्थात् क्षायोपशमिक सम्यक्त्व चौथे आदि चार गुणस्थानक में होता है । उपशम या क्षपक श्रेणी का प्रारंभ न हो, तभी तक यह गुणस्थानक होता है ।

क्षायिक सम्यक्त्व चौथे-पाँचवें आदि गुणस्थानक में पैदा होता है, फिर हमेशा रहता है । उसमें चौथा आदि ग्यारह गुणस्थान होते हैं ।

मिथ्यात्व, सास्वादन, मिश्र, देशविरति और सूक्ष्म संपराय चारित्र का अपना-अपना एकही गुणस्थानक है, क्योंकि वे-वे गुण (दोष) उसी गुणस्थानक में होते हैं ।

मन, वचन और काया के तीन योग, आहारक और शुक्ल लेश्या इन मार्गणाओं में एक से तेरह गुणस्थानक हैं । चौदहवें गुणस्थानक में सभी प्रकार के योग का अभाव होता है, वहाँ आहार भी नहीं होता है तथा लेश्या का भी अभाव होता है ।

अस्सन्निसु पढम दुगं, पढम तिलेसासु छच्च दुसु सत्त ।
पढमंतिमदुग अजया अणहारे मग्गणासु गुणा ।।23।।

शब्दार्थ :-

अस्सन्निसु=असंज्ञी में	**पढम दुगं=**पहले दो
पढम तिलेसासु=प्रथम तीन लेश्या में	**छच्च=**छह
दुसु=दो में	**सत्त=**सात
पढमंतिम=प्रथम अंतिम	**दुग=**द्विक
अजया=अविरत गुणस्थान	**अणहारे=**अनाहार
मग्गणासु=मार्गणाओं में	**गुणा=**गुणस्थानक

भावार्थ : असंज्ञियों में पहले दो गुणस्थानक होते हैं । कृष्ण, नील और कापोत लेश्या में पहले छह गुणस्थानक व तेज व पद्म लेश्या में पहले सात गुणस्थानक हैं । अनाहारक मार्गणा में पहले दो व अंतिम दो और अविरत सम्यग्दृष्टि ये पाँच गुणस्थान हैं । इस प्रकार मार्गणाओं में गुणस्थान का वर्णन पूर्ण हुआ ।

विवेचन :- असंज्ञी में दो गुणस्थानक होते है । पहला गुणस्थानक सभी प्रकार के असंज्ञि जीवों के होता है, जबकि दूसरा गुणस्थानक करण अपर्याप्त एकेन्द्रिय के होता हैं, क्योंकि लब्धि अपर्याप्त एकेन्द्रिय में कोई जीव सास्वादन भाव सहित जन्म नहीं लेता है ।

कृष्ण, नील और कापोत लेश्या के छह गुणस्थानक हैं । पहले चार गुणस्थानक की प्राप्ति के समय व प्राप्ति के बाद भी वे लेश्याएँ होती हैं ।

पाँचवें व छठे गुणस्थानक की प्राप्ति शुभ लेश्याओं में ही होती है, परंतु गुणस्थानक की प्राप्ति के बाद परिणाम की शुद्धि घट जाने पर अशुभ लेश्याएँ भी आ जाती हैं ।

तेजो लेश्या व पद्म लेश्या में पहले के सात गुणस्थानक कहे हैं । सात गुणस्थानकों को पाते समय व पाने के बाद भी ये दो लेश्याएँ रहती हैं ।

अनाहारक मार्गणा में पहला, दूसरा, चौथा, तेरहवाँ व चौदहवाँ ये पाँच गुणस्थानक होते हैं । तेरहवाँ गुणस्थानक केवली समुद्घात के तीसरे, चौथे व पाँचवें समय में जीव अनाहारक होता है । चौदहवें गुणस्थानक में योगनिरोध होने से अनाहारक अवस्था होती है ।

25 मार्गणाओं में योग

सच्चेयरमीस असच्च मोस मण वय विउव्वियाहारा ।
उरलं मीसाकम्मण, इय जोगा कम्ममणाहारे ।।24।।

शब्दार्थ :-

सच्चेयर=सत्य-असत्य
असच्चमोस=असत्यमृषावाद
वय=वचनयोग
उरलं=औदारिक
कम्मण=कार्मण
जोगा=योग
अणाहारे=अनाहारक में
मीस=मिश्र
मण=मनोयोग
विउव्वियाहारा=वैक्रिय-आहारक
मीसा=मिश्र
इय=इस प्रकार
कम्म=कार्मण

भावार्थ : सत्य, असत्य, मिश्र और असत्यमृषाजाद ये चार मनोयोग के भेद हैं-वचनयोग के भी ये चार भेद हैं । वैक्रिय, आहारक और औदारिक ये तीनों शुद्ध और मिश्र तथा कार्मण-इस प्रकार योग के पंद्रह भेद होते हैं ।

अनाहारक अवस्था में सिर्फ कार्मण योग ही होता है ।

विवेचन :-

मनोयोग के चार भेद हैं :

(1) सत्य मनोयोग : जिस मनोयोग से वस्तु के यथार्थ स्वरूप का विचार किया जाता है- जैसे जीव द्रव्य से नित्य और पर्याय से अनित्य है ।

(2) असत्य मनोयोग : जिस मनोयोग से वस्तु के विपरीत स्वरूप का विचार किया जाता है । जैसे-जीव नित्य ही है, अथवा अनित्य ही है ।

(3) सत्यासत्य मनोयोग : जिस मनोयोग से वस्तु के कुछ यथार्थ और कुछ अयथार्थ अंश का चिंतन किया जाता है । जैसे किसी व्यक्ति में गुण-दोष दोनों होने पर भी उस व्यक्ति को सिर्फ गुणी ही समझना ।

(4) असत्यामृषा मनोयोग : जिस मनोयोग द्वारा की जानेवाली कल्पना विधि-निषेध से शून्य हो **'जैसे-हे देवदत्त ! हे इन्द्रदत्त !'** इस कल्पना का अभिप्राय अन्य व्यक्ति को सिर्फ संबोधित करना है, किसी तत्त्व की स्थापना या उत्थापन नहीं है ।

26 वचनयोग के चार भेद

1. सत्यवचन योग : वस्तु के यथार्थ स्वरूप की प्ररूपणा करना सत्य वचन योग है । जैसे जगत् के सभी पदार्थ द्रव्य से नित्य व पर्याय से अनित्य हैं ।

2. मृषावचन योग : वस्तु के अयथार्थ स्वरूप की प्ररूपणा करना जैसे इस जगत् में परमात्मा का अस्तित्व ही नहीं है ।

3. मिश्रवचन योग : जिसमें सत्य व असत्य दोनों का मिश्रण हो । जैसे उद्यान में आम-नीम आदि अनेक प्रकार के वृक्ष होने पर भी उसे आम का उद्यान कहना ।

4. असत्यामृषावचन योग : जो वचन सत्य भी न हो और असत्य भी न हो । जैसे किसी को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए कहना-**'हे मोहन !'** इधर आओ ।

27 काययोग के 7 भेद

1. वैक्रियकाय योग : वैक्रिय शरीर द्वारा वीर्य शक्ति का जो व्यापार

होता है, वह वैक्रिय काययोग कहलाता है। देव व नरक के जीवों को यह शरीर जन्म से ही प्राप्त होता है, जबकि मनुष्य व तिर्यंचों को साधना के बल से वैक्रिय शरीर प्राप्त होता है। यह शरीर कभी छोटा कभी बड़ा, कभी हल्का-कभी भारी, कभी पतला कभी मोटा आदि अनेक रूप वाला हो सकता है।

2. वैक्रिय मिश्रकाय योग : देवता व नरक के जीवों को उत्पत्ति के दूसरे समय से लेकर अपर्याप्त अवस्था तक वैक्रिय और कार्मण के मिश्रवाला वैक्रिय मिश्रकाय योग होता है, तथा मनुष्य व तिर्यंचों को वैक्रिय लब्धि द्वारा वैक्रिय शरीर बनाते व छोड़ते समय। औदारिक और वैक्रिय के मिश्रवाला वैक्रिय मिश्रकाय योग होता है।

3. आहारक काययोग : आहारक शरीर की सहायता से होनेवाला वीर्य-शक्ति का व्यापार आहारक काययोग कहलाता है।

4. आहारक मिश्र काययोग : आहारक लब्धि धारी मुनि जब तीर्थंकर से प्रश्न का समाधान पाने के लिए जब आहारक शरीर बनाते हैं और उस शरीर का विसर्जन करते हैं, तब उन्हें आहारक तथा औदारिक का मिश्र काय योग होता है।

5. औदारिक काययोग : औदारिक वर्गणा से बने शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं। यह शरीर मनुष्य व तिर्यंचों को जन्म से प्राप्त होता है। यह औदारिक काययोग सभी औदारिक शरीरधारी मनुष्य-तिर्यंचों को पर्याप्त दशा में होता है।

6. औदारिक मिश्र काययोग : यह योग औदारिक शरीरधारी मनुष्य व तिर्यंचों को उत्पत्ति के दूसरे समय से लेकर अपर्याप्त अवस्था तक होता हैं। औदारिक और कार्मण का संयोग होने से इसे औदारिक मिश्र काययोग कहते है।

7. कार्मण शरीर काययोग : सिर्फ कार्मण शरीर की सहायता से जो प्रवृत्ति होती है, उसे कार्मण काययोग कहते है।

यह योग विग्रह गति में और उत्पत्ति के पहले समय में होता है।

केवली समुद्घात के तीसरे, चौथे और पाँचवें समय में भी सिर्फ कार्मण काययोग होता है।

28 कार्मण काययोग अनाहारक अवस्था

उपर्युक्त पंद्रह योगों में एक मात्र कार्मणयोग ही अनाहारक अवस्था में होता है बाकी के सभी योग आहारक अवस्था में होते हैं ।

अनाहारक अवस्था में कार्मणयोग होता ही है, ऐसा नियम नहीं है, परंतु जब कार्मणयोग होता है तब अवश्य अनाहारक अवस्था होती है ।

चौदहवें गुणस्थान में अनाहारक अवस्था होती है, परंतु कार्मण काययोग नहीं होता है ।

अतः अनाहारक मार्गणा में सिर्फ कार्मण काययोग ही होता है ।

नरगइ पणिंदि तस तणु अचक्खु नर नपु कसाय सम्म दुगे ।
संनि छ लेसाहारग भव मइसुअ ओहिदुगे सव्वे ।।25।।

शब्दार्थ :-

नरगइ=मनुष्यगति	**पणिंदि=**पंचेन्द्रिय जाति
तस=त्रसकाय	**तणु=**काययोग
अचक्खु=अचक्षुदर्शन	**नर=**पुरुषवेद
नपु=नपुंसक वेद	**कसाय=**कषाय
सम्मदुगे=क्षायिक-क्षायोपशमिक सम्यक्त्व	**संनि=**संज्ञी
छलेस=छह लेश्याएँ	**आहारग=**आहारक
भव=भव्य	**मइसुअ=**मति-श्रुत
ओहिदुगे=अवधिद्विक	**सव्वे=**सभी

भावार्थ : मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, काययोग, अचक्षुदर्शन पुरुषवेद, नपुंसकवेद, चार कषाय, क्षायिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, संज्ञी, छह लेश्याएँ, आहारक, भव्य, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिद्विक इन छब्बीस मार्गणाओं में सभी पंद्रह योग होते हैं ।

विवेचन :-

मनुष्य गति आदि 26 मार्गणाओं में सभी योग होते हैं । इन सभी

मार्गणाओं का संबंध मनुष्य गति से है और मनुष्य में सभी योग संभव हैं ।

प्रश्न : आहारक मार्गणा में कार्मण काय योग कैसे संभव है ? कार्मण योग में तो जीव अणाहारी होता है ?

उत्तर : संसारी सभी जीवों को चारों गतियों में विग्रहगति के समय कार्मण काययोग होता है, उसी प्रकार उत्पत्ति के प्रथम समय में भी कार्मण काययोग ही होता है और उसी से आहार ग्रहण होता है । इसी से आहारक मार्गणा में कार्मण काययोग भी माना जाता है ।

तिरि इत्थि अजय सासण, अनाण उवसम अभव्व मिच्छेसु । तेराहारदुगुणा ते उरलदुगूण सुरनरए ।।26।।

शब्दार्थ :-

तिरि=तिर्यंच गति	**इत्थि=**स्त्री वेद
अजय=अविरति	**सासण=**सास्वादन
अनाण=अज्ञान	**उवसम=**उपशम सम्यक्त्व
अभव्व=अभव्य	**मिच्छेसु=**मिथ्यात्व में
तेरा=तेरह	**आहारदुगुणा=**आहारकद्विक छोडकर
उरलदुगूण=औदारिकद्विक छोड़	**सुरनिरए=**देव नरक में

भावार्थ : तिर्यंचगति, स्त्रीवेद, अविरति, सास्वादन, तीन अज्ञान, उपशम सम्यक्त्व, अभव्य और मिथ्यात्व इन दस मार्गणाओं में आहारक-द्विक को छोड़कर तेरह योग होते हैं ।

देवगति और नरकगति में उक्त तेरह में औदारिकद्विक को छोड़ ग्यारह योग होते है ।

विवेचन :- स्त्रीवेद में आहारकद्विक के अभाव का मुख्य कारण यह है कि स्त्री को सर्व विरति होने पर भी उन्हें दृष्टिवाद (चौदहपूर्व) पढ़ने का अधिकार नहीं है । चौदहपूर्वी आहारक लब्धिधर मुनिश्री आहारक शरीर बना सकते है, अतः 14 पूर्वों के ज्ञान के अभाव में स्त्री को आहारक लब्धि का भी अभाव सिद्ध हो जाता है ।

उपशम सम्यक्त्व में आहारक योग न होने का यह कारण है कि उपशम समकिती आहारक लब्धि का प्रयोग नहीं करते हैं ।

तिर्यंचगति में तेरह योग कहे गए हैं परंतु वैक्रिय काययोग और वैक्रिय मिश्र काय योग वैक्रिय लब्धि के बल से वैक्रिय शरीर बनानेवाले तिर्यंचों के ही होता है ।

कार्मण और औदारिक मिश्र काययोग तिर्यंचों को अपर्याप्त अवस्था में ही होते हैं ।

अविरत सम्यग्दृष्टि, सास्वादन, तीन अज्ञान, अभव्य और मिथ्यात्व इन सात मार्गणाओं में चार मन के, चार वचन के, औदारिक व वैक्रिय ये दस योग पर्याप्त अवस्था में होते हैं । कार्मण काययोग, विग्रहगति में तथा उत्पत्ति के प्रथम समय में होता है । औदारिक मिश्र व वैक्रिय मिश्र अपर्याप्त अवस्था में होते है ।

देवगति और नरकगति में सर्वविरति का अभाव होने से दो आहारक योग तथा औदारिक शरीर नहीं होने से दो औदारिक योग संभव नहीं हैं, अतः चार योग कम हो जाने से देव व नरकगति में ग्यारह योग घटते हैं ।

कम्मुरल दुगं थावरि, ते सविउव्वि दुग पंच इगि पवणे ।
छ असंनि चरम वइजुय ते विउव दुगूण चउ विगले ।।27।।

शब्दार्थ :-

कम्मुरल=कार्मण औदारिक
थावरि=स्थावर में
सविउव्वि=वैक्रिय सहित
पंच=पाँच
पवणे=वायुकाय में
असंनि=असंज्ञि
विउवदुग=वैक्रियद्विक
चउ=चार
दुगं=दो
ते=वे
दुग=दो
इगि=एक
छ=छह
चरमवइजुय=चरम वचनयोग
ऊण=छोड़कर
विगले=विकलेन्द्रिय में

भावार्थ : स्थावरकाय में कार्मण और औदारिकद्विक ये तीन योग होते हैं। एकेन्द्रिय जाति और वायुकाय में उपर्युक्त तीन तथा वैक्रियद्विक कुल पाँच योग होते हैं ।

असंज्ञी में उक्त पाँच व चरम वचनयोग ये छह योग होते है ।

विकलेन्द्रिय में उपर्युक्त छह में से वैक्रियद्विक घटाकर शेष चार योग होते हैं ।

विवेचन :

यद्यपि वायुकाय के जीव भी स्थावर ही कहलाते हैं, फिर भी स्थावर के बाद वायुकाय का स्वतंत्र निर्देश होने से यहाँ स्थावर में पृथ्वी, अप्, तेज और वनस्पति इन चार को गिनकर उनमें कार्मण और औदारिकद्विक ये तीन योग बतलाए हैं ।

इन तीन योगों में कार्मण काययोग विग्रहगति तथा उत्पत्ति के प्रथम समय में, औदारिक मिश्रकाय योग, उत्पत्ति के दूसरे समय से लेकर अपर्याप्त अवस्था में तथा औदारिक काययोग पर्याप्त अवस्था में होता है ।

पूर्व के पंचेन्द्रिय भव में जो जीव वैक्रिय शरीर व अंगोपांग नामकर्म, देवद्विक व नरकद्विक बाँधकर मरकर वायुकाय में आते हैं, उन वायुकाय के जीवों को वैक्रिय लब्धि होती है। उन वायु के जीवों को वैक्रियद्विक सहित पाँच योग होते हैं, उन जीवों को वैक्रिय शरीर बनाते समय वैक्रिय मिश्र काययोग तथा उसके बाद वैक्रिय काययोग होता है। ये दो योग बादर पर्याप्त वायुकाय में ही होते हैं ।

असंज्ञी में छह योग होते हैं । कार्मण काययोग, औदारिकद्विक व वैक्रियद्विक इन पाँचों के साथ असत्यामृषा वचनयोग द्वीन्द्रिय आदि असंज्ञी जीवों को होता है ।

द्वीन्द्रिय आदि वचनयोग के साधन भाषा-लब्धि से युक्त होते हैं, अतः असत्यामृषा वचनयोग होता है ।

द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय विकलेन्द्रियत्रिक में कार्मण, औदारिकद्विक व असत्यामृषा वचनयोग ये चार योग होते हैं। इनमें वैक्रिय लब्धि नहीं होने से वैक्रियद्विक योग नहीं होते हैं ।

कम्मुरलमीस विणु मणवइ समइय छेय चक्खु मणनाणे ।
उरलदुग कम्म पढमंतिम मणवइ केवलदुगम्मि ।।28।।

शब्दार्थ :-

कम्म=कार्मण	**चक्खु=**चक्षुदर्शन
उरलमीस=औदारिकमिश्र	**मणनाणे=**मनः पर्यय ज्ञान
विणु=बिना	**उरलदुग=**औदारिकद्विक
मण=मनोयोग	**कम्म=**कार्मण
वइ=वचनयोग	**पढमंतिम=**पहला और अंतिम
समइय=सामायिक	**मणवइ=**मनोयोग-वचनयोग
छेय=छेदोपस्थापनीय संयम	**केवलदुगम्मि=**केवलद्विक में ।

भावार्थ : मनोयोग, वचनयोग, सामायिक और छेदोपस्थापनीय चारित्र, चक्षुदर्शन और मनः पर्यय ज्ञान, इन छह मार्गणाओं में कार्मण तथा औदारिकमिश्र योग को छोड़ तेरह योग होते हैं। केवलद्विक में औदारिकद्विक, कार्मण, प्रथम और अन्तिम मनोयोग व वचनयोग होते हैं ।

विवेचन :- मनोयोग आदि मनः पर्ययज्ञान पर्यन्त छह मार्गणाओं में तेरह योग एवं केवलद्विक मार्गणा में सात योग होने का संकेत गाथा में किया गया है । जिनका स्पष्टीकरण नीचे लिखे अनुसार है ।

मनोयोग, वचनयोग, सामायिक संयम, छेदोपस्थापनीय संयम, चक्षुदर्शन और मनः पर्यय ज्ञान ये छह मार्गणायें पर्याप्त अवस्था में ही पाई जाती है। इसीलिए अपर्याप्त अवस्थाभावी दो योग कार्मण और औदारिकमिश्र उनमें नहीं पाये जाते हैं। किन्तु शेष तेरह योग उनमें होते हैं। यद्यपि केवली को केवली समुद्घात अवस्था में कार्मण और औदारिकमिश्र ये दो योग होते हैं, जिससे पर्याप्त अवस्था में भी यह संभव है, तथापि यह जानना चाहिए कि केवली समुद्घात में जब ये दोनों योग होते हैं तब मनोयोग आदि मनः पर्यय ज्ञान पर्यन्त उक्त छह मार्गणाओं में से कोई भी मार्गणा नहीं होती है । इसीलिए इन छह मार्गणाओं में कार्मण और औदारिकमिश्र योग के सिवाय शेष तेरह योग कहे गए हैं ।

केवलद्विक-केवलज्ञान और केवलदर्शन-मार्गणाओं में औदारिकद्विक-औदारिक व औदारिकमिश्र काययोग, कार्मण काययोग तथा सत्य तथा असत्यामृषा मनोयोग और सत्य व असत्यामृषा वचनयोग कुल सात योग माने हैं। जिसका कारण यह है कि सयोगि केवली को केवली-समुद्घात के दूसरे से सातवें तक छह समयों को छोड़कर औदारिक योग तो सदैव रहता ही है तथा औदारिकमिश्र काययोग केवली-समुद्घात के दूसरे, छठे और सातवें समय में तथा कार्मणयोग तीसरे, चौथे, पाँचवें समय में होता है। सत्य और असत्यामृषा ये दो वचनयोग देशना देने के समय तथा सत्य व असत्यामृषा ये दोनों मनोयोग मनः पर्ययज्ञानी अथवा अनुत्तर विमानों के देवों के मन द्वारा शंका पूछने और उसका उत्तर देते समय होते हैं। इसका अर्थ यह है कि जब कोई अनुत्तर विमानवासी देव अथवा मनः पर्ययज्ञानी अपने स्थान पर रहकर मन से ही केवली को प्रश्न पूछते हैं तब उनके प्रश्नों को केवलज्ञान द्वारा जानकर केवली भगवान उनका उत्तर मन से ही देते हैं यानी मनोद्रव्य को ग्रहण कर उसकी ऐसी रचना करते हैं कि जिसको प्रश्नकर्ता अवधिज्ञान या मनः पर्ययज्ञान के द्वारा देखकर केवली भगवान् द्वारा दिये गए उत्तर को अनुमान द्वारा जान लेते हैं।

मनोद्रव्य को अवधिज्ञान या मनः पर्ययज्ञान द्वारा जान लेना स्वाभाविक ही है। यद्यपि मनोद्रव्य अत्यन्त सूक्ष्म है-लेकिन अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान में उसको प्रत्यक्ष कर लेने की शक्ति है।

मणवइउरला परिहारि सुहुमि नव ते उ मीसि सविउव्वा ।
देसे सविउव्विदुगा सकम्मुरलमिस्स अहखाए ।।29।।

शब्दार्थ :-

मणवइउरला=मनोयोग, वचनयोग, औदारिक, काययोग
परिहार=परिहार विशुद्धि संयम में
सुहुमि=सूक्ष्मसम्पराय संयम में
नव=नौ
ते=वे (पूर्वोक्त)
उ=तथा
मीसि=मिश्रदृष्टि में
सविउव्वा=वैक्रिय सहित
देसे=देशविरति में
सविउव्विदुगा=वैक्रियद्विक सहित
सकम्मुरलमिस्स=कार्मण और औदारिक मिश्र सहित
अहखाए=यथाख्यात चारित्र में।

भावार्थ : परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसम्पराय संयम में मनोयोग चतुष्क, वचनयोग चतुष्क और औदारिक ये नौ योग होते हैं । मिश्रदृष्टि (सम्यग् मिथ्यात्वदृष्टि) में उक्त नौ के साथ वैक्रिय तथा देशविरति में उक्त नौ के साथ वैक्रियद्विक तथा यथाख्यात संयम में कार्मण और औदारिक मिश्र काययोग सहित योग हैं ।

विवेचन :- गाथा में मिश्रदृष्टि तथा संयममार्गणा के परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसम्पराय, देशविरति और यथाख्यातसंयम में योगों की संख्या का कथन किया है । जिनमें से सर्वप्रथम परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसम्पराय संयम की योग संख्या बतलाते हैं ।

परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसम्पराय इन दोनों संयमों में मनोयोग चतुष्क, वचनयोग चतुष्क और औदारिक ये नौ योग हैं । किन्तु आहारकद्विक, वैक्रियद्विक, कार्मण और औदारिकमिश्र ये छह योग नहीं होते हैं । इसका कारण यह है कि संयम पर्याप्त अवस्थाभावी है किन्तु अपर्याप्त अवस्था में नहीं होता है । इसलिए अपर्याप्त अवस्थाभावी कार्मण और औदारिकमिश्र ये दो योग परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसम्पराय संयम में नहीं पाये जाते हैं तथा वैक्रिय और वैक्रियमिश्र इन दोनों योगों के न होने का कारण यह है कि यद्यपि वैक्रियद्विक लब्धि प्रयोग करनेवाले मनुष्य को होते हैं और लब्धि प्रयोग में औत्सुक्य एवं प्रमाद सम्भव है । लेकिन परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसम्पराय संयमधारी अप्रमादी होने से लब्धि का प्रयोग नहीं करते हैं ।

आहारक और आहारक मिश्र ये दो योग चतुर्दश पूर्वधर प्रमत्त मुनि को ही होते हैं, किन्तु परिहारविशुद्धि संयमी कुछ कम दस पूर्व का पाठी होता है और सूक्ष्मसम्पराय संयमी चतुर्दश पूर्वधर होने पर भी अप्रमत्त होने से उनमें आहारकद्विक योग नहीं माने हैं ।

इसीलिए परिहारविशुद्धि और सम्पराय संयम में कार्मण, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र, आहारक और आहारकमिश्र ये छह योग सम्भव नहीं होने से शेष मनोयोग चतुष्क, वचनयोग चतुष्क, औदारिक काययोग कुल नौ योग होते हैं ।

मिश्रदृष्टि में उक्त नौ योगों के साथ वैक्रिय योग भी होने से दस योग

होते हैं । मिश्रसम्यक्त्व में वैक्रिययोग को भी मानने का कारण यह है कि देव और नारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती होते हैं । मिश्र सम्यक्त्व की यह विशेषता है कि इस सम्यक्त्व के समय मृत्यु नहीं होती है । जिससे अपर्याप्त अवस्था में यह सम्यक्त्व (मिश्रदृष्टि) नहीं पाया जाता है । इसीलिए अपर्याप्त अवस्थाभावी कार्मण, औदारिकमिश्र और वैक्रियमिश्र ये तीनों योग नहीं हैं । मिश्र सम्यक्त्व के समय चौदह पूर्व का ज्ञान संभव नहीं होने से आहारकद्विक योग भी नहीं होते हैं । इस कारण से कार्मण, औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र और आहारकद्विक इन पाँच योगों को छोड़कर शेष दस योग मिश्र सम्यक्त्व में होते हैं ।

मिश्रदृष्टि में वैक्रियमिश्र योग नहीं मानने पर प्रश्न होता है कि अपर्याप्त अवस्थाभावी वैक्रियमिश्र योग मिश्र दृष्टि में नहीं माना है सो तो ठीक है लेकिन वैक्रियलब्धि का प्रयोग करते समय मनुष्य और तिर्यंच को पर्याप्त अवस्था में होने वाले वैक्रियमिश्र योग को मिश्र सम्यक्त्व में नहीं मानने का क्या कारण है ? इसका समाधान यही है कि मिश्र सम्यक्त्व और लब्धिजन्य वैक्रियमिश्र योग ये दोनों पर्याप्त अवस्थाभावी हैं, किन्तु इनका साहचर्य नहीं है । यानी मिश्र सम्यक्त्व के समय लब्धि का प्रयोग न किये जाने के कारण वैक्रियमिश्र काययोग नहीं होता है ।

देशविरति संयम में पूर्वोक्त नौ योगों के अतिरिक्त वैक्रियद्विक योगों को मिलाने से ग्यारह योग बताये हैं । वैक्रियद्विक को देशविरति संयम में मानने का कारण यह है कि अंबड़ आदि श्रावकों द्वारा वैक्रियलब्धि से वैक्रिय शरीर बनाये जाने की बात शास्त्र में प्रसिद्ध है । श्रावक चतुर्दश पूर्वधर नहीं होता है, जिससे उसमें आहारकद्विक योग तथा व्रत का पालन पर्याप्त अवस्था में ही सम्भव होने से औदारिकमिश्र और कार्मणयोग नहीं माने जाते हैं । इसीलिए आहारकद्विक एवं औदारिकमिश्र और कार्मण इन चार योगों के सिवाय शेष ग्यारह योग देशविरति संयम होते हैं ।

यथाख्यात संयम में भी ग्यारह योग हैं । मनोयोग चतुष्क, वचनयोग चतुष्क, औदारिक योग इन पूर्वोक्त नौ योगों के साथ इस संयम में कार्मण और औदारिकमिश्र ये दो योग और भी पाये जाते हैं । इन दोनों योगों का ग्रहण

केवली समुद्घात की अपेक्षा किया गया है । क्योंकि आठ समय वाले इस समुद्घात के दूसरे, छठे और सातवें समय में औदारिकमिश्र और तीसरे, चौथे, पाँचवें समय में कार्मण योग होता है । यथाख्यात संयम में आहारकद्विक एवं वैक्रियद्विक इन चार योगों के न मानने का कारण यह है कि ये चारों प्रमाद सहचारी हैं और यथाख्यात संयम अप्रमाद अवस्था वाले ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह इन चार गुणस्थानों में होता है ।

29 मार्गणाओं में उपयोग

ति अनाण नाण पण चउ, दंसण बार जियलक्खणुवओगा ।
विणु अनाण दु केवल, नव सुरतिरिनिरयअजएसु ।।30।।

शब्दार्थ :-

ति अनाण=तीन अज्ञान	**नाण पण**=पाँच ज्ञान
चउ दंसण=चार दर्शन	**बार**=बारह
जिय लक्खण=जीव के लक्षण	**उवओगा**=उपयोग
विणु=विना	**अनाणहु दु**=दो अज्ञान
केवल=केवलज्ञान	**नव**=नौ
सुर=देव	**तिरि**=तिर्यंच
निरय=नरक	**अजएसु**=अविरति में

भावार्थ : तीन अज्ञान, पाँच ज्ञान और चार दर्शन ये बारह उपयोग जीव के लक्षण हैं ।

देवगति, तिर्यंचगति, नरकगति में मनःपर्यवज्ञान व केवलद्विक सिवाय के नौ उपयोग होते हैं ।

विवेचन :- किसी भी वस्तु के असाधारण धर्म को लक्षण कहा जाता है । जो असाधारण धर्म है, वह लक्ष्य को छोड़कर अन्य किसी में नहीं होता है । `उपयोग' यह जीव का असाधारण धर्म अर्थात् लक्षण है, अतः जीव को छोडकर अजीव में नहीं होता है ।

मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान, केवलदर्शन ये तीन उपयोग

सर्वविरतिधरों के ही होते है । देव गति, नरकगति व तिर्यंच गति तथा अविरति इन चार मार्गणाओं में सर्वविरति का अभाव होने से उन्हें ये तीन उपयोग नहीं होते हैं अतः उनमें नौ ही उपयोग पाए जाते हैं ।

अविरतिधर में जो शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं उनमें तीन ज्ञान व तीन दर्शन रूप छह उपयोग होते हैं तथा शेष में तीन अज्ञान और दो दर्शन रूप पाँच उपयोग समझने चाहिए ।

तस जोय वेय सुक्का, हार नर पणिंद संनि भवि सव्वे ।
नयणेयर पण लेसा कसाय दस केवलदुगूणा ।।31।।

शब्दार्थ :-

तस=त्रस	**जोय**=योग
वेय=वेद	**सुक्का**=शुक्ल
हार=आहारक	**नर**=मनुष्य
पणिंद=पंचेन्द्रिय	**संनि**=संज्ञी
भवि=भव्य	**सव्वे**=सभी
नयण=चक्षु	**इयर**=इतर-अचक्षु
पण=पाँच	**लेसा**=लेश्या
कसाय=कषाय	**दस**=दस
केवलदुग=केवलद्विक	**ऊणा**=न्यून

भावार्थ : त्रसकाय, तीनयोग, तीनवेद, शुक्ललेश्या, आहारक शरीर मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, संज्ञी और भव्य इन तेरह मार्गणाओं में सभी उपयोग होते हैं ।

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, शुक्ल सिवाय पाँच लेश्या और चार कषाय इन ग्यारह मार्गणाओं में केवलद्विक को छोडकर दस उपयोग होते हैं ।

विवेचन :- त्रसकाय आदि तेरह मार्गणाओं में योग, शुक्ल लेश्या और आहारक शरीर ये तीन मार्गणाएँ तेरहवें गुणस्थानक तक और शेष दस चौदहवें गुणस्थानक तक होती हैं । इन सब में बारह उपयोग होते हैं ।

चौदहवें गुणस्थानक में जो वेद कहा गया है, वह द्रव्य वेद समझना

चाहिए, क्योंकि भाववेद तो नौवें गुणस्थानक तक ही रहता है। चक्षुदर्शन और अचसुदर्शन बारहवें गुणस्थानक तक, कृष्ण आदि तीन लेश्याएँ छठे गुणस्थानक तक, तेज और पद्म लेश्या सातवें गुणस्थानक तक कषाय का उदय दसवें गुणस्थानक तक होता है, अतः इनमें केवलद्विक को छोड़ 10 उपयोग होते हैं।

चउरिंदिऽसन्नि दुअनाणदंस इग वि त्ति थावरि अचक्खू।
तिअनाण दंसणदुगं अनाणतिगं अभव मिच्छदुगे ॥32॥

शब्दार्थ :-

चउरिंदि=चतुरिन्द्रिय में	**ति अनाण=**तीन अज्ञान
असन्नि=असंज्ञी में	**दंसणदुगं=**दो दर्शन
दुअनाणदंस=दो अज्ञान और दो दर्शन	**अनाणतिगं=**अज्ञानत्रिक में
इग वि त्ति थावरि=एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और स्थावरकाय में	**अभव=**अभव्य में
अचक्खू=चक्षुदर्शन के बिना	**मिच्छदुगे=**मिथ्यात्वद्विक में

भावार्थ : चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय में दो अज्ञान तथा दो दर्शन, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और स्थावरकाय में चक्षुदर्शन के सिवाय तथा अज्ञानत्रिक, अभव्य और मिथ्यात्वद्विक में तीन अज्ञान और दो दर्शन होते हैं।

विवेचन :- गाथा में चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय में चार उपयोग, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और पृथ्वीकाय आदि पाँच स्थावरों में तीन उपयोग तथा अज्ञानत्रिक-मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञान, अभव्य और मिथ्यात्वद्विक में पाँच उपयोग बतलाये हैं; जिनका स्पष्टीकरण नीचे लिखे अनुसार समझना चाहिए।

चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में दो अज्ञान-मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान तथा दो दर्शन-चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ये चार उपयोग है। चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में सम्यक्त्व न होने से सम्यक्त्व सहचारी मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय केवल ये पाँच ज्ञान तथा अवधि, केवल ये दो दर्शन कुल सात उपयोग पाये ही नहीं जाते हैं और विभंगज्ञान प्राप्त करने की योग्यता नहीं है। इसीलिए चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय

जीवों में अज्ञानद्विक-मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और दर्शनद्विक-चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन कुल मिलाकर चार उपयोग होते हैं ।

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय इन आठ मार्गणाओं में सम्यक्त्व न होने से सर्वविरति सहचारी मतिज्ञान आदि पाँच ज्ञान, अवधि व केवलदर्शन और तथाविध योग्यता का अभाव होने से विभंगज्ञान ये आठ उपयोग तो इनमें पाये ही नहीं जाते हैं और चक्षु इन्द्रिय न होने से पूर्वोक्त मतिअज्ञान, श्रुत अज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन इन चार उपयोगों में से मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और अचक्षुदर्शन ये तीन ही उपयोग होते हैं ।

अज्ञानत्रिक-मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञान, अभव्य और मिथ्यात्वद्विक-मिथ्यात्व, सासादन, इन छह मार्गणाओं में अज्ञानत्रिक और दर्शनद्विक अर्थात् मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन ये पाँच उपयोग होते हैं । लेकिन सम्यक्त्व व सर्वविरति सहचारी मतिज्ञान आदि पाँच ज्ञानोपयोग और अवधि व केवलदर्शन ये सात उपयोग नहीं होते हैं ।

उक्त कथन कार्मग्रन्थिक अपेक्षा किया गया है । क्योंकि कार्मग्रन्थिक पहले तीन गुणस्थानों में अज्ञान मानते हैं और सैद्धांतिक विभंगज्ञानी को अवधिदर्शन मानते हैं और सासादन गुणस्थान में मिथ्यात्व के उदय का अभाव होने से अज्ञान न मानकर ज्ञान मानते हैं । इस प्रकार की कार्मग्रन्थिक और सैद्धांतिक मत-भिन्नता है । यहां जो अज्ञानत्रिक आदि छह मार्गणाओं में अवधिदर्शन और सासादन मार्गणा में ज्ञान नहीं माना है सो कार्मग्रन्थिक मत के अनुसार समझना चाहिए ।

केवल दुगे नियदुगं, नव तिअनाण विणु खइयअहखाये ।
दंसण नाणतिगं, देसि मीसि अन्नाणमीसं तं ।।33।।

शब्दार्थ :-

केवल दुगे=केवलद्विक
नव=नौ
विणु=बिना
अहखाये=यथाख्यात
नियदुगं=निजद्विक
तिअनाण=तीन अज्ञान
खइय=क्षायिक
दंसणनाण=दर्शन-ज्ञान

तिगं=त्रिक	**देसि=**देशविरति में
मीसि=मिश्र में	**अन्नाणमीसं=**अज्ञानमिश्र
तं=वही	

भावार्थ : केवलद्विक में केवलज्ञान और केवलदर्शन दो ही उपयोग हैं ।

क्षायिक सम्यक्त्व और यथाख्यात चारित्र में तीन अज्ञान को छोड़ नौ ही उपयोग होते हैं ।

देशविरति में तीन ज्ञान और तीन दर्शन ये छह उपयोग होते है ।

मिश्रदृष्टि में वे ही छह उपयोग अज्ञान मिश्रित होते हैं ।

विवेचन :

केवलज्ञान हो जाने के बाद मतिज्ञान आदि दस छाद्मस्थिक उपयोग नहीं रहते हैं, अतः केवलद्विक में सिर्फ केवलज्ञान और केवलदर्शन दो उपयोग ही होते हैं ।

क्षायिक सम्यक्त्व में मिथ्यात्व नहीं होता है तथा यथाख्यात चारित्र में भी ग्यारहवें गुणस्थान में सत्तागत मिथ्यात्व होता है, परंतु उदय में नहीं, अतः इन दो मार्गणाओं में मिथ्यात्व उदय सहभावी तीन अज्ञान नहीं होने से नौ उपयोग ही होते है ।

इन दो मार्गणाओं में छद्मस्थ अवस्था में चारज्ञान व तीन दर्शन अर्थात् कुल 7 उपयोग होते हैं । तथा केवली अवस्था में केवलज्ञान व केवलदर्शन ये दो उपयोग होते हैं ।

देशविरति में मिथ्यात्व का उदय न होने के कारण तीन अज्ञान नहीं होते तथा सर्वविरति की अपेक्षा रखनेवाले मनःपर्यवज्ञान और केवलद्धिक ये तीन उपयोग भी नहीं होते है, अतः सिर्फ छह ही होते है ।

मिश्रदृष्टि में देशविरति की तरह छह उपयोग होते है, परंतु वे ज्ञान के बदले अज्ञान मिश्रित होते हैं ।

मण नाण चक्खुवज्जा, अणहारि तिन्नि दंसण चउ नाणा ।
चउ नाण संजमोवसमवेयगे ओहिदंसे य ।।34।।

शब्दार्थ :-

मणनाण=मनः पर्यवज्ञान	**चक्खुवज्जा=**चक्षुदर्शन छोड
अणहारि=अनाहारक	**तिन्नि=**तीन
दंसण=दर्शन	**चउ=**चार
नाणा=ज्ञान	**चउ नाण=**चार ज्ञान
संजमो=संयम	**उवसम=**उपशम
वेयगे=वेदक	**ओहिदंसे=**अवधिदर्शन

भावार्थ : अनाहारक मार्गणा में मनः पर्यवज्ञान और चक्षुदर्शन को छोड़ दस उपयोग होते हैं ।

चार ज्ञान, चार संयम, उपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और अवधिदर्शन आदि ग्यारह मार्गणाओं में चार ज्ञान व तीन दर्शन कुल सात उपयोग होते हैं ।

विवेचन :- विग्रहगति, केवली समुद्घात और मोक्ष में अनाहारक अवस्था रहती है । विग्रहगति में आठ उपयोग होते हैं ।

भावी तीर्थंकर आदि समकिती को तीन ज्ञान, अन्य मिथ्यादृष्टि को तीन अज्ञान तथा इन दोनों समकिती व मिथ्यादृष्टि को अचक्षुदर्शन व अवधिज्ञान इस प्रकार आठ उपयोग हुए ।

केवली समुद्घात और मोक्ष में केवलज्ञान व केवलदर्शन दो उपयोग होते हैं । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा में कुल 10 उपयोग हुए ।

मनःपर्यवज्ञान व चक्षुदर्शन ये दो उपयोग पर्याप्त अवस्था में ही होने के कारण अनाहारक मार्गणा में नहीं होते हैं ।

केवलज्ञान के सिवाय चार ज्ञान, यथाख्यात को छोड चार चारित्र, औपशमिक व क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और अवधिदर्शन ये ग्यारह मार्गणाएँ चौथे से लेकर बारहवें गुणस्थानक में होती है, अतः इनमें तीन अज्ञान व केवल द्विक को छोड़कर शेष 7 उपयोग होते हैं ।

मार्गणाओं में उपयोग का कथन करने के पश्चात् अन्य आचार्यों द्वारा की हुई विवक्षाओं को अगली गाथा में प्रस्तुत करते हैं–

दो तेर तेर बारस मणे कमा अट्ठ दु चउ चउ वयणे ।
चउ दु पण तिन्नि काए जियगुणजोगोवओगऽन्ने ।।35।।

शब्दार्थ :-

दो=दो	**चउ**=चार
तेर=तेरह	**दु**=दो
बारस=बारह	**पण**=पाँच
मणे=मनोयोग में	**तिन्नि**=तीन
कमा=अनुक्रम से	**काये**=काययोग में
अट्ठ=आठ	**जिय**=जीवस्थान
दु=दो	**गुण**=गुणस्थान
चउ=चार	**जोग**=योग
चउ=चार	**उवओग**=उपयोग
वयणे=वचनयोग में	**अन्ने**=अन्य आचार्य (कहते हैं) ।

भावार्थ : अन्य आचार्यों के मतानुसार मनोयोग में दो, तेरह, तेरह और बारह, वचनयोग में आठ, दो चार और चार, काययोग में चार, दो, पाँच और तीन क्रमशः जीवस्थान, गुणस्थान, योग और उपयोग होते हैं ।

विवेचन : पूर्व में बिना किसी विशेष विवक्षा के मन, वचन और काययोग में जीवस्थान आदि का विचार किया गया है । लेकिन इस गाथा में योगों में विशेष विवक्षाओं को लेकर जीवस्थान, गुणस्थान, योग और उपयोग सम्बन्धी मतान्तर का संकेत किया गया है कि अन्य आचार्य मनोयोग में दो जीवस्थान, तेरह गुणस्थान, तेरह योग और बारह उपयोग मानते हैं । इसी प्रकार से वचनयोग में आठ जीवस्थान, दो गुणस्थान, चार योग और चार उपयोग तथा काययोग में चार जीवस्थान, दो गुणस्थान, पाँच योग एवं तीन उपयोग मानते हैं ।

उक्त मतान्तर का अभिप्राय नीचे लिखे अनुसार है–

पूर्व में जो योग कहे गये हैं उनमें काययोग सभी जीवों को, वचनयोग द्वीन्द्रियादिक सभी जीवों को और मनोयोग संज्ञी पंचेन्द्रिय को बताया है। लेकिन कतिपय आचार्य मतान्तर से कहते हैं कि जिसे एक योग होता है, उसे दूसरा योग नहीं मानना चाहिए। संज्ञी पंचेन्द्रिय को मनोयोग है, उसे वचनयोग और काययोग नहीं है। विकलेन्द्रियों और असंज्ञी पंचेन्द्रिय को वचनयोग और एकेन्द्रिय को सिर्फ एक काययोग मानें तब उनके मतानुसार–

मनोयोगी को दो जीवस्थान-संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त, तेरह गुणस्थान-मिथ्यात्व से लेकर सयोगिकेवली पर्यन्त। तेरह योग-औदारिकमिश्र और कार्मण के सिवाय। क्योंकि ये दोनों योग जन्म के समय तथा केवली समुद्घात में होते हैं और वहाँ मनोयोग नहीं होता है। बारह उपयोग-मतिज्ञान आदि होते हैं।

वचनयोगी को आठ जीवस्थान-दो द्वीन्द्रिय के, दो त्रीन्द्रिय के, दो चतुरिन्द्रिय के और दो असंज्ञी पंचेन्द्रिय के। दो गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन। चार योग-औदारिकद्विक, कार्मण और असत्यामृषा वचन। चार उपयोग-दो अज्ञान और दो दर्शन।

काययोगी को चार जीवस्थान-एकेन्द्रिय के सूक्ष्म और बादर तथा इनके पर्याप्त-अपर्याप्त के भेद से दो गुणस्थान-मिथ्यात्व, सासादन। पाँच योग-औदारिकद्विक, वैक्रियद्विक और कार्मण। तीन उपयोग-दो अज्ञान और अचक्षुदर्शन।

इस प्रकार से योग में जीवस्थान आदि मानने के सम्बन्ध में मतान्तर का संक्षेप में उल्लेख किया गया है। विशेष स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।

पूर्व में किसी प्रकार की विवक्षा किये बिना तीन योगों में जीवस्थान आदि का विचार किया गया है, जबकि यहाँ विशेष विवक्षा पूर्वक। यहाँ प्रत्येक योग की यथासंभव अन्य योग से रहित की विवक्षा है और पूर्व में काययोग को मनोयोग और वचनयोग रहित माना है। वचनयोग, मनोयोग रहित और मनोयोग सामान्य से विवक्षित है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय में मनोयोग रहित वचनयोग तथा एकेन्द्रिय में मनोयोग और वचनयोग रहित सिर्फ काययोग होता है। मनोयोग में संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त ये

दो जीवस्थान होते हैं । यहाँ अपर्याप्त का अर्थ करण-अपर्याप्त समझना चाहिए ।

गाथा 17 में मनोयोगमार्गणा का जो संज्ञी पंचेन्द्रिय यह एक ही जीवस्थान माना है सो वर्तमान मनोयोग वाले जीव की अपेक्षा से और यहाँ (गाथा 35 में) जो दोनों जीवस्थान माने हैं, वे वर्तमान और भावी उभय मनोयोग वालों को मनोयोगी मानकर ।

अयोगिकेवली के सिवाय तेरह गुणस्थान होते हैं और चौदहवाँ गुणस्थान अयोगि को ही होता है, योग वाले को नहीं ।

कार्मण और औदारिकमिश्र के अलावा तेरह योग होते हैं । यहाँ योग में मनोयोग के समकालीन योगों की गणना की है, दूसरों की नहीं । इसीलिए अपर्याप्त अवस्थाभावी अथवा केवली समुद्घातभावी उक्त दोनों योग मनोयोग मार्गणा में सम्भव नहीं हैं । केवली समुद्घात में द्रव्यमन है किन्तु प्रयोजन न होने से केवलज्ञानी मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण नहीं करते हैं । अर्थात् उस अवस्था में भी वचनयोग व काययोग का साहचर्य वाला मनोयोग नहीं है ।

उपयोग बारह होते हैं । मन वाले प्राणियों में सभी तरह की बोधशक्ति होती है । इसीलिए मनोयोग मार्गणा में बारह उपयोग होते हैं ।

अब वचनयोग सम्बन्धी मतान्तर का उल्लेख करते हैं । यहाँ वचन योग का आशय मनोयोग से रहित वचनयोग है । वचनयोग मार्गणा में आठ जीवस्थान, दो गुणस्थान, चार योग, चार उपयोग होते हैं । आठ जीवस्थान इस प्रकार हैं कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय चारों पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से आठ । 17 वीं गाथा में सामान्य वचनयोग वाले की विवक्षा है, लेकिन यहाँ वर्तमान और भावी दोनों अवस्थाभावी जीवस्थानों की गणना है जिससे वहाँ पाँच और यहाँ आठ जीवस्थान कहे हैं ।

मिथ्यात्व और सासादन ये दो गुणस्थान होते हैं । कार्मण, औदारिकमिश्र, औदारिक और असत्यामृषा वचनयोग ये चार योग हैं तथा मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन ये चार उपयोग हैं । पहले गाथा 22, 28 और 31 में जो तेरह गुणस्थान, तेरह योग और बारह उपयोग माने गए हैं, वहाँ वचनयोग मार्गणा में समकालीन योगों की विवक्षा है, यानी अपर्याप्त

अवस्थाभावी कार्मण, औदारिकमिश्र की गणना नहीं की है। यहां असमकालीन किन्तु भावी की अपेक्षा गणना करके कार्मण-औदारिकमिश्र की भी विवक्षा की है। इसी प्रकार दो गुणस्थानों और चार उपयोगों के बारे में भी समझ लेना चाहिए।

अब काययोग के मतान्तर का स्पष्टीकरण करते हैं कि काययोग यानी वचनयोग, मनोयोग रहित काययोग। इसमें चार जीवस्थान, दो गुणस्थान, पाँच योग और तीन उपयोग होते हैं।

सूक्ष्म और बादर एकेन्द्रिय, ये दोनों पर्याप्त और अपर्याप्त, इस प्रकार से चार जीवस्थान होते हैं। पहला और दूसरा ये दो गुणस्थान, औदारिकद्विक, वैक्रियद्विक और कार्मण ये पाँच योग तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन ये तीन उपयोग होते हैं। पहले गाथा 16, 22, 24 और 31 में जीवस्थान चौदह, गुणस्थान तेरह, योग पन्द्रह और उपयोग बारह बतलाए गए हैं। वहाँ अन्य योग सहचरित काययोग की विवक्षा है और यहाँ अन्य योग रहित काययोग की विवक्षा। जो सिर्फ एकेन्द्रिय में ही पाया जाता है। इसी प्रकार योग, उपयोग आदि को भी घटाया जा सकता है।

छ सु लेसासु सठाणं, एगिंदि असंनि भूदगवणेसु।
पढमा चउरो तिन्नि उ, नारय विगलग्गि पवणेसु ॥36॥

शब्दार्थ :-

छ सु=छह में
सठाणं=अपना स्थान
असंनि=असंज्ञी
दग=अप्काय
पढमा चउरो=प्रथम चार
नारय=नारक
अग्गि=अग्निकाय
लेसासु=लेश्याओं में
एगिंदि=एकेन्द्रिय
भू=पृथ्वीकाय
वणेसु=वनस्पति में
तिन्नि=तीन
विगल=विकलेन्द्रिय
पवणेसु=वायुकाय में

भावार्थ : छह लेश्या मार्गणाओं में अपना-अपना स्थान है। एकेन्द्रिय, असंज्ञि-पंचेन्द्रिय, पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय इन पाँच मार्गणाओं

में पहली चार लेश्याएँ हैं । नरक गति, विकलेन्द्रिय त्रिक, तेऊकाय और वायुकाय में पहली तीन लेश्याएँ हैं ।

विवेचन :- एक समय में एक जीव को एक ही लेश्या होती है अर्थात् कृष्ण लेश्यावाले जीव में एक समय में कृष्ण लेश्या ही होती है, अन्य नहीं ।

एकेन्द्रिय आदि पाँच मार्गणाओं में कृष्ण से तेज पर्यंत चार लेश्याएँ होती हैं, इनमें प्रथम तीन लेश्याएं तो भवप्रत्यय होने के कारण सदैव होती हैं, परंतु तेजो लेश्या अपर्याप्त अवस्था में ही होती है । जब कोई जीव तेजोलेश्या में मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में जन्म लेता है तब उसे अपर्याप्त अवस्था में तेजोलेश्या भी होती है ।

नरक गति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तेउकाय और वायुकाय में कृष्ण आदि तीन लेश्याएँ ही होती हैं ।

अहखाय सुहुम केवल दुगि सुक्का छ वि सेस ठाणेसु ।
नर निरय देव तिरिया थोवा दु असंख-णंत गुणा ।।37।।

शब्दार्थ :-

अहखाय=यथाख्यात	**सुहुम=**सूक्ष्मसंपराय
केवलदुगि=केवलद्विक	**सुक्का=**शुक्ल लेश्या
छ वि=छह भी	**सेसठाणेसु=**शेष स्थानों में
नर निरय=नर-नरक	**देव=**देव
तिरिया=तिर्यंच	**थोवा=**थोड़े
दु असंख=दो असंख्य	**अणंतगुणा=**अनंत गुणा

भावार्थ : यथाख्यात चारित्र सूक्ष्म संपराय चारित्र और केवलद्विक इन चार मार्गणाओं में शुक्ल लेश्या है । शेष मार्गणा स्थानों में छह लेश्याएँ हैं ।

मनुष्य सबसे कम हैं, नारक उनसे असंख्यात गुणे हैं । नारकों से देव असंख्यात गुणे हैं और देवों से तिर्यंच अनंतगुणे हैं ।

विवेचन : यथाख्यात आदि चार मार्गणाओं में परिणाम इतने विशुद्ध होते हैं कि वहाँ शुक्ल लेश्या के सिवाय अन्य कोई लेश्या नहीं होती है ।

इस प्रकार 21 मार्गणाओं का वर्णन पूर्ण हुआ । अब शेष रही 41 मार्गणाओं में अर्थात् देवगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, तीन योग, तीन वेद, चार कषाय, मति आदि चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन चारित्र (सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहार विशुद्धि) देशविरति, अविरति, तीन दर्शन, भव्यत्व, अभव्यत्व, तीन सम्यक्त्व । सास्वादान, मिश्र, मिथ्यात्व, संज्ञि, आहारक और अनाहारक में सभी प्रकार की छह लेश्याएँ होती हैं ।

30 अल्प-बहुत्वे

चार गतियों में अल्प-बहुत्व बतलाते हैं ।

सबसे कम मनुष्य हैं । मनुष्य दो प्रकार के हैं-गर्भज और संमूर्च्छिम ।

गर्भज मनुष्य की जघन्य संख्या उन्नीस अंकों के बराबर होती है ।

पाँचवें वर्ग को छठे वर्ग से गुणने पर जो संख्या आती है, उतने मनुष्य होते है ।

(1) 2 का वर्ग चार (2) 4 का वर्ग 16 (3) 16 का वर्ग 256 (4) 256 का वर्ग 65536 (5) 65536 का वर्ग 4294967296 होता है । (6) पाँचवें वर्ग की संख्या का वर्ग 18446744073709651616 । छठे वर्ग की संख्या को पाँचवें वर्ग की संख्या से गुणने पर 792281625142643375955439503336 होता है । इस प्रकार 29 अंक होते हैं ।

अथवा 1 का दुगुना 2, 2 का दुगुना 4 इस प्रकार 96 बार दुगुना दुगुना करने पर भी यही संख्या आती है ।

(1) **उत्कृष्ट :** जब संमूर्च्छिम मनुष्य पैदा होते हैं तो वे असंख्यात होते हैं ।

असंख्य उत्सर्पिणी-अवरर्पिणी के जितने समय होते हैं, उतनी संख्या में मनुष्य हो सकते है ।

(2) नारक भी असंख्य हैं । मनुष्य की असंख्यात गुनी संख्या से असंख्यातगुणी अधिक है ।

(3) भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक, ये सब देव मिलकर नारकों से असंख्यात गुणे हैं ।

(4) देवों से तिर्यंच अनंतगुणे हैं, क्योंकि साधारण वनस्पतिकाय में जो जीव हैं, वे अनंत हैं ।

31 इन्द्रिय और कायमार्गणा का अल्पबहुत्व

पण चउ ति दु एगिंदी थोवा तिन्नि अहिया अणंतगुणा ।
तस थोव असंखऽग्गी भूजलनिल अहिय वणऽणंता ।।38।।

शब्दार्थ :-

पण=पंचेन्द्रिय	**तस=**त्रसकाय
चउ=चतुरिन्द्रिय	**थोव=**थोड़े
ति=त्रीन्द्रिय	**असंखऽग्गी=**असंख्यातगुणा अग्निकाय
दु=द्वीन्द्रिय	**भू=**पृथ्वीकाय
एगिंदी=एकेन्द्रिय	**जल=**जलकाय
थोवा=अल्प	**अनिल=**वायुकाय
तिन्नि=तीनों	**अहिय=**अधिक
अहिया=अधिक	**वण=**वनस्पतिकाय
अणंतगुणा=अनन्तगुणे	**अणंता=**अनन्त

भावार्थ : पंचेन्द्रिय थोड़े हैं, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और द्वीन्द्रिय ये तीनों अनुक्रम से एक-एक से अधिक होते हैं, एकेन्द्रिय उनसे अनन्तगुणे हैं । त्रसकाय के जीव अन्य सब कायों के जीवों से थोड़े हैं, इनसे अग्निकाय के जीव असंख्यातगुणे हैं, पृथ्वीकाय, जलकाय और वायुकाय के जीव एक-एक से अधिक और उनसे वनस्पतिकाय के जीव अनन्त हैं ।

विवेचन : गाथा में अनुक्रम से इन्द्रिय और काय मार्गणा का अल्पबहुत्व बतलाया है । पहले इन्द्रियमार्गणा का अल्पबहुत्व बतलाते हुए कहा है कि पंचेन्द्रिय सबसे थोड़े हैं यानी चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा थोड़े (अल्प) हैं । उसके बाद चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय से विशेषाधिक हैं । चतुरिन्द्रिय से त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं और त्रीन्द्रिय से द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं और द्वीन्द्रिय से एकेन्द्रिय तो अनन्तगुणे हैं । इसका कारण यह है कि प्रतर की असंख्यात कोटाकोटि योजन-प्रमाण एक प्रादेशिकी

सूचि-श्रेणि के जितने प्रदेश हैं, घनीकृत लोक की उतनी सूचि-श्रेणियों के प्रदेशों के बराबर वे जीव हैं और एक-दूसरे से विशेषाधिक हैं ।

उक्त कथन से जिज्ञासा होती है कि आगम में असंख्यात कोटा कोटि योजन प्रमाण सूचि-श्रेणि के जितने प्रदेश हैं, घनीकृत लोक की उतनी सूचि-श्रेणियों के प्रदेशों के बराबर द्वीन्द्रिय जीव कहे गये हैं और त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय तिर्यंच द्वीन्द्रिय के बराबर । तब पंचेन्द्रिय आदि जीवों का उक्त अल्पबहुत्व कैसे घट सकता है ? इसका समाधान यह है कि असंख्यात संख्या के असंख्यात प्रकार हैं । अतएव असंख्यात कोटाकोटि योजन-प्रमाण सूचि-श्रेणि शब्द से सब जगह एक ही असंख्यात संख्या न लेकर भिन्न-भिन्न लेना चाहिए । पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के प्रमाण की जो असंख्यात संख्या ली जाती है, वह इतनी छोटी है कि जिससे अन्य सब देव, नारक आदि पंचेन्द्रियों को मिलाने पर भी पंचेन्द्रिय जीव चतुरिन्द्रिय की अपेक्षा कम ही होते हैं ।

द्वीन्द्रिय से एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे इसलिए कहे गये हैं कि साधारण वनस्पतिकाय के जीव अनन्तानन्त हैं और वे सभी एकेन्द्रिय ही होते हैं ।

इन्द्रियमार्गणा का अल्पबहुत्व बतलाने के पश्चात् कायमार्गणा का अल्पबहुत्व बतलाते हैं कि सबसे थोड़े त्रसकाय के जीव हैं । इसका कारण यह है कि सब प्रकार के त्रस घनीकृत लोक के एक-एक प्रतर के प्रदेशों के बराबर भी नहीं होते हैं और सिर्फ तेजस्काय के जीव असंख्यात लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर होते हैं । इसी कारण त्रस सबसे थोड़े माने हैं ।

तेजस्काय के जीव असंख्यात लोकाकाश के प्रदेशों की संख्या के बराबर होने से त्रसकाय की अपेक्षा असंख्यातगुणे माने जाते हैं । उनकी अपेक्षा पृथ्वीकाय, पृथ्वीकाय से जलकाय, जलकाय से वायुकाय के जीव विशेषाधिक हैं । वायुकाय के जीवों से वनस्पतिकायिक अनन्त गुणे हैं क्योंकि निगोद के जीव अनन्त लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं ।

यद्यपि आगम में तेजस्कायिक, पृथ्वीकायिक, जलकायिक और वायुकायिक ये सभी सामान्य रूप से असंख्यात लोकाकाश-प्रदेश प्रमाण माने हैं, तथापि उनके परिमाण सम्बन्धी असंख्यात संख्या भिन्न-भिन्न समझना चाहिए और इसी भिन्नता से उनका अल्पबहुत्व कहा गया है ।

अब आगे की गाथा में योग और वेद मार्गणा का अल्पबहुत्व कहते हैं ।

32 योग और वेदमार्गणा का अल्पबहुत्व

मण वयण काय जोगा, थोवा असंख गुण अणंतगुणा ।
पुरिसा थोवा इत्थी, संखगुणाणंतगुण कीवा ।।39।।

शब्दार्थ :-

मण-वयण=मन वचन	**काय जोगा=**काययोग
थोवा=थोडे	**असंखगुण=**असंख्य गुणा
अणंतगुणा=अनंत गुणा	**पुरिसा=**पुरुष
इत्थी=स्त्री	**संख गुणा=**संख्यात गुणा
अणंतगुण=अनंत गुणा	**कीवा=**नपुंसक

भावार्थ : अन्य योगवालों की अपेक्षा मनोयोग वाले कम हैं । उनसे वचनयोग वाले असंख्य गुणा और काययोग वाले वचनयोग वालों की अपेक्षा अनंतगुणा हैं ।

सबसे कम पुरुष हैं । पुरुषों से स्त्रियाँ संख्यात गुणा और नपुंसक स्त्रियों से अनंतगुणे हैं ।

विवेचन : संज्ञी प्राणियों में ही मन होता है । संज्ञी प्राणी कम हैं, अतः मनोयोगवाले सबसे कम हैं । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व असंज्ञी पंचेन्द्रिय में वचन योग होता है, अतः मनोयोगवालों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं तथा काययोग तो सूक्ष्म निगोद के जीवों को भी होता है, अतः वे अनंतगुणे हैं ।

तिर्यंच-स्त्रियाँ तिर्यंच पुरुषों से तीन गुणी व तीन अधिक होती हैं ।

मनुष्य स्त्रियाँ-मनुष्य जाति से पुरुषों से सत्ताईस गुणी व सत्ताईस अधिक होती हैं ।

देवों की अपेक्षा देवियाँ बत्तीस गुनी व बत्तीस अधिक हैं । इस प्रकार पुरुषों से स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं । एकेन्द्रिय से असंज्ञि-पंचेन्द्रिय तक तथा नारक नपुंसक होते हैं, अतः वे स्त्रियों से अनंतगुणे हैं ।

33 कषाय-ज्ञान-संयम व दर्शन मार्गणाओं में अल्पबहुत्व

माणी कोही माई लोही अहिय मणनाणिनो थोवा ।
ओहि असंखा मइ सुय अहिय सम असंख विब्भंगा ।।40।।

शब्दार्थ :-

माणी=अभिमानी	**कोही=**क्रोधी
माई=मायावी	**लोही=**लोभी
अहिय=अधिक	**मणनाणिनो=**मनःपर्यव ज्ञानी
थोवा=थोडे	**ओहि=**अवधिज्ञानी
असंखा=असंख्य	**मइसुय=**मति-श्रुतज्ञानी
अहिय=अधिक	**सम=**समान
असंख=आरंखा	**विब्भंगा=**विभंगज्ञानी

भावार्थ : मान कषायी सबसे कम हैं । मानियों से क्रोधी विशेषाधिक हैं । क्रोधी से मायावी विशेषाधिक हैं और मायावी से लोभी विशेषाधिक हैं ।

अन्य की अपेक्षा मनःपर्यवज्ञानी कम हैं । उनसे असंख्य गुणे अवधिज्ञानी हैं और मतिज्ञानी व श्रुतज्ञानी परस्पर तुल्य हैं, परंतु अवधिज्ञानी विशेषाधिक हैं ।

विभंगज्ञानी श्रुतज्ञानी से असंख्यगुणे हैं ।

विवेचन : अन्य कषायों की अपेक्षा मान की स्थिति कम है । मान की अपेक्षा क्रोध अधिक समय तक रहता है, अतः मानी सबसे कम हैं । मानी से क्रोधी ज्यादा हैं । क्रोध से माया की स्थिति ज्यादा है, अतः मानी से मायावी ज्यादा हैं । लोभ का उदय दसवें गुणस्थानक तक रहता है, अतः लोभी सबसे ज्यादा है ।

मनःपर्यव ज्ञान संयमधारी मनुष्य को ही होता है, अतः उस ज्ञान के धारक सबसे कम हैं । सम्यग्दृष्टि मनुष्य-तिर्यंचों तथा देवनारकों को भी अवधिज्ञान होता है, अतः मनःपर्यवज्ञानी की अपेक्षा अवधिज्ञानी असंख्यात गुणे हैं ।

अवधिज्ञानी को छोड़ सभी सम्यग्दृष्टि मनुष्य व तिर्यंच मति व श्रुत ज्ञानवाले होते हैं, अतः अवधिज्ञानी से मति-श्रुतज्ञानी कुछ अधिक है ।

मति व श्रुतज्ञानी दोनों एक समान संख्यावाले हैं ।

मति-श्रुतज्ञानी से विभंगज्ञानी असंख्यात गुणे हैं, क्योंकि मिथ्यादृष्टि देव-नारक सम्यग्दृष्टि से असंख्यात गुणे हैं ।

केवलिणो णंतगुणा, मइसुयअन्नाणि णंतगुण तुल्ला ।
सुहूमा थोवा परिहार संख अहखाय संखगुणा ।।41।।

शब्दार्थ :-

केवलिणो=केवलज्ञानी	**णंतगुणा=**अनंतगुणा
मइसुय अन्नाणि=मति श्रुत अज्ञानी	**तुल्ला=**तुल्य
सुहूमा=सूक्ष्म संपरायवाले	**थोवा=**थोड़े
परिहार=परिहार विशुद्धिवाले	**संख=**संख्यातगुणा
अहखाय=यथाख्यात चारित्रवाले	**संखगुणा=**संख्यात गुणा

भावार्थ : केवलज्ञानी विभंगज्ञानियों से अनंतगुणे हैं । मति अज्ञानी व श्रुत अज्ञानी परस्पर तुल्य हैं, परंतु केवलज्ञानियों से अनंतगुणे हैं ।

सूक्ष्म संपराय चारित्रवाले अन्य चारित्रवालों की अपेक्षा थोड़े हैं । परिहार विशुद्धिवाले सूक्ष्म संपरायवालों से संख्यात गुणे हैं । यथाख्यातवाले परिहार विशुद्धिवालों की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं ।

विवेचन : सिद्ध भगवंत अनंत हैं, वे सभी केवलज्ञानी हैं, अतः विभंगज्ञानी से केवलज्ञानी अनंतगुणा हैं । मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी परस्पर तुल्य हैं, परंतु केवलज्ञानी से अनंतगुणे हैं, क्योंकि वनस्पतिकाय के जीव सिद्धों से भी अनंतगुणे हैं और वे सभी मति अज्ञानी व श्रुत अज्ञानी हैं ।

सूक्ष्म संपराय चारित्रवाले उत्कृष्ट से 200 से 900 तक होते हैं । परिहार विशुद्धि चारित्रधर उत्कृष्ट से 2000 से 9000 तक, यथाख्यात चारित्र उत्कृष्ट से दो करोड़ से 9 करोड़ होते हैं । अतः इन तीनों चारित्रधरों में उत्तरोत्तर संख्यात गुणा अल्प बहुत्व माना गया है ।

छेय समईय संखा, देस असंखगुण णंतगुण अजया ।
थोव असंख दुणंता, ओहि नयण केवल अचक्खू ।।42।।

शब्दार्थ :-

छेयसमईय=छेदोपस्थापनीय	**संखा=**संख्यात गुण
देस=देशविरतिधर	**असंखगुण=**असंख्यात गुण
णंतगुण=अनंतगुण	**अजया=**अविरतिधर
थोव=थोड़े	**असंख=**असंख्य
दुणंता=	**ओहि=**अवधि
नयण=चक्षु	**केवल=**केवल
अचक्खू=अचक्षु	

भावार्थ : छेदोपस्थापनीय चारित्रवाले यथाख्यातचारित्रधर से संख्यात गुणे हैं । सामायिक चारित्रवाले छेदोपस्थापनीय चारित्रधर से संख्यातगुणे हैं । देशविरतिवाले सामायिक चारित्रधर से असंख्यातगुणे हैं और अविरतिवाले देशविरतिधर से अनंतगुणे हैं ।

विवेचन :- यथाख्यात चारित्रवालों की अपेक्षा छेदोपस्थापनीय संयमवाले संख्यात गुणे हैं । सामायिक चारित्रवाले छेदोपस्थापनीय से संख्यात गुणे हैं ।

यथाख्यात संयम वालों की संख्या उत्कृष्ट से दो करोड से नौ करोड़ बतलाई है । जबकि छेदोपस्थापनीय संयमवाले दो सौ करोड़ से नौ सौ करोड़ बताये हैं । सामायिक संयमवाले छेदोपस्थापनीय संयमियों की उत्कृष्ट संख्या से अधिक दो हजार करोड़ से नौ हजार करोड़ तक होते हैं । इस प्रकार वे संख्यात गुणे कहे गए हैं ।

सामायिक संयमवालों से देशविरति संयमवाले असंख्यातगुणे हैं क्योंकि देशविरतिधर में पंचेन्द्रिय तिर्यंच भी आते हैं, जो असंख्य हैं ।

उक्त चारित्रधरों को छोड अन्य सभी जीव अविरत हैं । उसमें अनंतकायिक वनस्पति के जीव भी आ जाते हैं, अतः उनकी अपेक्षा अविरतिधर जीव अनंत गुणे हैं ।

34 दर्शन मार्गणा का अल्पबहुत्व

दर्शन मार्गणा के अवांतर चार भेद हैं । उनमें अवधिदर्शन वाले थोड़े हैं क्योंकि देव, नारक और कुछ मनुष्य-तिर्यंचों को ही अवधिदर्शन होता है ।

अवधिदर्शन की अपेक्षा चक्षुदर्शन वाले असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि चक्षुदर्शन चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को होता है । वे सभी जीव असंख्य हैं अतः अवधि दर्शनवालों से असंख्यात गुणे हैं ।

जितने भी केवली व सिद्ध हैं, वे सभी केवल दर्शनवाले हैं, उनकी संख्या चक्षुदर्शनवालों से अनंत गुणी है ।

अचक्षुदर्शन अनंतकायिक वनस्पति के जीवों में तथा मनुष्य आदि सभी पंचेन्द्रिय जीवों में है, उन सबकी संख्या अनंत है, अतः केवल-दर्शनवालों से अचक्षुदर्शनवालों की संख्या अनंतगुणी है ।

35 लेश्या आदि पाँच मार्गणाओं का अल्पबहुत्व

पच्छाणुपुव्विलेसा, थोवा दो संख णंत दो अहिया ।
अभवियर थोवणंता, सासण थोवोवसम संखा ।।43।।

शब्दार्थ :-

पच्छाणुपुव्वि=पश्चानुपूर्वी	**लेसा=**लेश्या
थोवा=थोड़े	**दो=**दो
संख=संख्यातगुणा	**णंत=**अनंतगुणा
अहिया=अधिक	**अभवियर=**अभव्य-भव्य
थोवणंता=थोड़े-अनंतगुणा	**सासण=**सास्वादन
थोवोवसम=औपशमिक सम्यक्त्व वाले थोड़े	**संखा=**संख्या

भावार्थ : लेश्याओं का अल्पबहुत्व पश्चानुपूर्वी से जानना चाहिए । जैसे शुक्ल लेश्यावाले थोड़े हैं । पद्मलेश्यावाले उससे संख्यात गुणे हैं, तेजोलेश्यावाले उससे संख्यातगुणे हैं ।

कापोतलेश्यावाले उससे अनंतगुणे हैं। नील लेश्यावाले उससे विशेषाधिक हैं तथा कृष्ण लेश्यावाले उससे विशेषाधिक हैं ।

भव्यों से अभव्य कम हैं, भव्य जीव, अभव्य जीवों से अनंतगुणे हैं ।

सास्वादन सम्यक्त्ववाले अन्य सब से कम हैं। औपशमिक सम्यग्दृष्टि वाले सास्वादन सम्यग्दृष्टिवालों से संख्यातगुणे हैं ।

विवेचन : लांतक देवलोक से ऊपर अनुत्तर विमान तक के वैमानिक देवों को तथा संख्यात वर्षवाले गर्भज मनुष्य व तिर्यंचों को शुक्ल लेश्या होती है ।

पद्मलेश्या सनत्कुमार से ब्रह्मलोक तक के वैमानिक देवों को तथा संख्यात वर्ष वाले कुछ गर्भज मनुष्यों व तिर्यंचों को होती है ।

बादर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय, कुछ तिर्यंच मनुष्य, भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और सौधर्म-ईशान वैमानिक देवों को तेजो लेश्या होती है ।

शुक्ल लेश्यावालों से पद्मलेश्यावाले संख्यात गुणे होते हैं। तेजोलेश्या से पद्मलेश्यावाले संख्यात गुणे होते हैं ।

साधारण वनस्पतिकाय जीवों में कापोतलेश्या होती है अतः तेजोलेश्यावालों से कापोत लेश्यावाले अनंतगुण हैं ।

कापोतलेश्या से नीललेश्यावाले अधिक हैं और नीललेश्या से कृष्ण लेश्यावाले जीव अधिक हैं ।

अभव्य जीव जघन्ययुक्त चौथे अनंत की संख्यावाले हैं, जबकि भव्य अनंतानंत हैं। अतः अभव्यों से भव्य अनंतगुणा हैं ।

औपशमिक सम्यक्त्व को छोड़नेवाले जीवों को ही सास्वादन सम्यक्त्व होता है, अतः अन्य दृष्टिवालों की अपेक्षा सास्वादनवाले जीव कम ही होते हैं ।

औपशमिक सम्यक्त्ववाले सभी सम्यक्त्व का वमन कर मिथ्यात्व के अभिमुख होते हैं, ऐसा भी नहीं है। इसी कारण औपशमिक सम्यक्त्व से गिरनेवालों की अपेक्षा उसमें स्थिर रहनेवाले संख्यात गुणे हैं ।

मीसा संखा वेयग, असंखगुण खइय मिच्छ दु अणंता ।
संनियर थोवणंता-णहार थोवेयर असंखा ।।44।।

शब्दार्थ :-

मीसा=मिश्रदृष्टिवाले	**संखा=**संख्यात गुण
वेयग=क्षायोपशमिक सम्यग् दृष्टिवाले	**असंखगुण=**असंख्यगुणा
खइय=क्षायिक	**मिच्छ=**मिथ्यादृष्टिवाले
दु=दो	**अणंता=**अनंत
संनियर=संज्ञि असंज्ञि	**थोव=**थोड़े
णंता=अनंत	**अणहार=**अनाहारक
थोवेयर=थोड़े ज्यादा	**असंखा=**असंख्य

भावार्थ : मिश्रदृष्टिवाले औपशमिक सम्यग्दृष्टिवालों से संख्यात गुणे हैं । क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टिवाले, मिश्रदृष्टिवालों से असंख्यात गुणे हैं ।

क्षायिक सम्यग्दृष्टिवाले क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टिवालों से अनंतगुणे है ।

मिथ्यादृष्टिवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टिवालों से अनंतगुणे हैं ।

संज्ञी जीव असंज्ञी जीवों से कम हैं और असंज्ञी जीव उनसे अनंतगुणे हैं ।

अनाहारक जीव आहारक जीवों की अपेक्षा कम है और आहारक जीव उनसे असंख्यात गुणे हैं ।

विवेचन : तीसरे मिश्र गुणस्थानक की प्राप्ति दो प्रकार से होती है । कुछ जीव पहले गुणस्थानक को छोड़कर मिश्रदृष्टि प्राप्त करते हैं तो कुछ जीव चौथे गुणस्थानक से च्युत होकर मिश्र दृष्टि प्राप्त करते हैं, इस कारण औपशमिक सम्यग्दृष्टिवाले जीवों से मिश्रदृष्टिवाले जीव संख्यात गुणे होते हैं ।

मिश्रदृष्टिवालों की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टिवाले असंख्यगुणे होते हैं, क्योंकि मिश्र गुणस्थानक की स्थिति सिर्फ अन्तर्मुहूर्त ही है, जबकि क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन की स्थिति कुछ अधिक छासठ सागरोपम की है ।

क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि से क्षायिक सम्यग्दृष्टि अनंतगुणा हैं, क्योंकि मोक्ष में रहे सिद्ध भगवंत अनंत हैं ।

क्षायिक सम्यक्त्वी से भी मिथ्यात्वी अनंतगुणा हैं, क्योंकि वनस्पतिकाय के सभी जीव मिथ्यादृष्टि हैं, जो सिद्धों से भी अनंतगुणे हैं ।

देव, नारक, गर्भज मनुष्य तथा गर्भज तिर्यंच ही संज्ञी हैं अन्य सभी संसारी जीव असंज्ञी हैं । वनस्पति के जीव अनंत हैं, अतः संज्ञी की अपेक्षा असंज्ञी जीव अनंतगुणे हैं ।

विग्रहगति में रहे जीव, केवली समुद्घात के तीसरे, चौथे व पाँचवें समय में रहे जीव तथा चौदहवें गुणस्थानक मे रहे जीव तथा सिद्ध भगवंत अनाहारक हैं, शेष सभी जीव आहारक हैं ।

अनाहारक की अपेक्षा आहारक जीव असंख्यात गुणे हैं ।

36 गुणस्थानों में जीवस्थान

सव्व जियठाण मिच्छे, सग सासणि पण अपज्ज सन्निदुगं ।
संमे सन्नी दुविहो, सेसेसुं संनिपज्जत्तो ।।45।।

शब्दार्थ :-

सव्व=सभी	**जियठाण**=जीवस्थान
मिच्छे=मिथ्यात्व में	**सग**=सात
सासणि=सास्वादन में	**पण**=पाँच
अपज्ज=अपर्याप्त	**सन्निदुगं**=संज्ञिद्विक
संमे=सम्यक्त्व में	**सन्नी**=संज्ञी
दुविहो=दो प्रकार	**सेसेसुं**=शेष में
संनिपज्जत्तो=संज्ञि पर्याप्त	

भावार्थ : मिथ्यात्व गुणस्थान में सभी जीवस्थान हैं । सास्वादन में कुल सात जीवस्थान हैं पाँच अपर्याप्त (बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय) तथा दो संज्ञी-पर्याप्त व अपर्याप्त जीवस्थान हैं ।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में दो संज्ञी-पर्याप्त व अपर्याप्त जीवस्थान हैं ।

इन तीन को छोड़ शेष ग्यारह गुणस्थानों में पर्याप्त संज्ञी जीवस्थान है ।

विवेचन : एकेन्द्रिय आदि सभी प्रकार के संसारी जीव मिथ्यात्व गुणस्थानक में पाए जाते हैं, अतः पहले गुणस्थानक में सभी जीव हैं ।

दूसरे गुणस्थानक में सात जीवस्थान कहे हैं, उनमें जो छह अपर्याप्त कहे हैं, वे करण-अपर्याप्त समझने चाहिए-लब्धि अपर्याप्त नहीं । क्योंकि लब्धि अपर्याप्त तो पहले ही गुणस्थानक में होते हैं ।

देशविरति आदि के परिणाम संज्ञी प्राणी को छोड़ अन्य जीवों में नहीं होते हैं, अतः पहले, दूसरे व चौथे को छोड़ शेष ग्यारह गुणस्थानक सिर्फ पर्याप्त संज्ञी जीवों को ही होते हैं ।

37 गुणस्थानों में योग

मिच्छ दुग अजइजोगा, हार दुगूणा अपव्व पणगे उ ।
मण वइ उरलं सविउव्वि मीसि सविउव्वदुग देसे ।।46।।

शब्दार्थ :-

मिच्छ=मिथ्यात्व	**दुग**=द्विक
अजइ=अविरति गुणस्थान	**जोगा**=योग
आहारदुग=आहारकद्विक	**ऊणा**=न्यून
अपुव्वपणगे=अपूर्वकरण आदि पांच	**मणवइ**=मन-वचन
उरलं=औदारिक	**सविउव्वदुग**=वैक्रिय द्विक सहित
देसे=देशविरति में	

भावार्थ : मिथ्यात्व सास्वादन और अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में आहारक द्विक को छोड़कर तेरह योग होते हैं ।

अपूर्वकरण से लेकर पाँच गुणस्थानकों में चार मन, चार वचन और एक औदारिक कुल नौ योग होते हैं ।

मिश्र गुणस्थानक में उक्त नौ व वैक्रिय, कुल 10 योग होते हैं ।

देशविरति में उक्त नौ तथा वैक्रिय द्विक कुल ग्यारह योग होते हैं ।

विवेचन : आहारक और आहारक मिश्र ये दो योग सर्वविरतिधर के ही होते हैं, अतः पहले, दूसरे व चौथे गुणस्थानक में ये दो योग नहीं होते है । इनके सिवाय के तेरह योग होते हैं ।

विग्रहगति और उत्पत्ति के प्रथम समय में कार्मण योग होता है । उत्पत्ति के दूसरे समय से लेकर अपर्याप्त अवस्था में वैक्रिय मिश्र और औदारिक मिश्र ये दो योग होते हैं । चार मनोयोग, चार वचन योग, औदारिक और वैक्रिय ये दस पर्याप्त अवस्था में होते है ।

आठवें से बारहवें तक के गुणस्थान में नौ योग ही होते हैं, ये गुणस्थानक विग्रह गति और अपर्याप्त अवस्था में नहीं होते हैं, अतः इनमें कार्मण और औदारिक मिश्र योग नहीं होते हैं तथा ये गुणस्थानक अप्रमत्त मुनि के ही होते हैं, अतः प्रमादजन्य वैक्रिय या आहारक लब्धि का प्रयोग नहीं होने से वैक्रियद्विक और आहारकद्विक ये चार योग भी नहीं होते हैं अतः छह योगों का अभाव होने से नौ योग ही होते हैं ।

तीसरे गुणस्थानक में आहारकद्विक, औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र और कार्मण इन पाँच को छोड़ दस योग होते हैं ।

अपर्याप्त अवस्था में तीसरा गुणस्थानक नहीं होता है, अतः अपर्याप्त अवस्था भावी कार्मण योग, औदारिक मिश्र और वैक्रिय मिश्र योग नहीं होते हैं तथा संयमधर को ही आहारकद्विक होने से तीसरे गुणस्थानक में भी ये दो योग नहीं होते हैं ।

देशविरति गुणस्थानक में ग्यारह योग होते हैं । उसमें अपर्याप्त अवस्था भावी कार्मण और औदारिक मिश्रकाययोग नहीं होता है तथा सर्वविरति का अभाव होने से आहारकद्विक भी नहीं होते हैं, अतः चार योग न होने से ग्यारह योगों की संभावना होती है ।

साहार दुग पमत्ते, ते विउवाहारमीस विणु इयरे ।
कम्मुरलदुगंताइम, मण वयण सजोगि न अजोगी ।।47।।

शब्दार्थ :-

साहारदुग=आहारक द्विक सहित	**पमत्ते=**प्रमत्त गुणस्थानक में
ते=वे	**विउवाहार=**वैक्रिय आहारक
मीस=मिश्र	**विणु=**बिना
इयरे=शेष	**कम्मुरल=**कार्मण-औदारिक
दुग=द्विक	**अंत=**अंत
आइम=प्रथम	**मणवयण=**मन-वचन
सजोगि=सयोग में	**अजोगी=**अयोगी में

भावार्थ : प्रमत्त (छठे) गुणस्थानक में देशविरति संबंधी ग्यारह और आहारक द्विक कुल तेरह योग होते हैं ।

अप्रमत्त (सातवें) गुणस्थानक में वैक्रिय मिश्र और आहारक मिश्र को छोड़ ग्यारह योग होते हैं ।

सयोगी गुणस्थानक में कार्मण औदारिकद्विक, सत्य मनोयोग, असत्यामृषा मनोयोग, सत्य वचनयोग और असत्यामृषा वचनयोग इस प्रकार कुल 7 योग होते हैं ।

अयोगी गुणस्थानक में योग का सर्वथा अभाव होता है ।

विवेचन : छठे गुणस्थानक में तेरह योग कहे गए है । चार मन के, चार वचन के और एक औदारिक, ये 9 योग तो सभी मुनियों के होते हैं, परंतु वैक्रियद्विक और आहारकद्विक तो सिर्फ वैक्रिय व आहारक लब्धिधारी मुनियों के ही वैक्रिय व आहारक शरीर बनाते समय होते हैं ।

सातवाँ गुणस्थानक अप्रमत्त मुनि के होता है । वैक्रिय और आहारक लब्धि का प्रयोग भी प्रमाद कहलाता है । अतः वैक्रिय मिश्र और आहारकमिश्र काययोग अप्रमत्त अवस्था में नहीं होते हैं । इस प्रकार अप्रमत्त गुणस्थानक में इन दो का अभाव होने से ग्यारह योग ही माने गए हैं ।

वैक्रिय व आहारक शरीर बन गया हो तो वहाँ अप्रमत्त अवस्था भी

संभव है, अतः 7 वें गुणस्थानक में वैक्रिय काययोग व आहारक काययोग भी माना गया है। अप्रमत्त दशा में वैक्रिय व आहारक लब्धि का प्रारंभ व परित्याग नहीं होता है।

तेरहवें सयोगी गुणस्थानक में सात योग कहे गए हैं। केवली समुद्घात के समय कार्मण और औदारिकमिश्र काययोग होता है। अन्य समय में औदारिक काययोग होता है।

अनुत्तरदेव विमानवासी को प्रश्न का जवाब देते समय दो मनोयोग होते हैं तथा देशना देते समय दो वचनयोग होते हैं अतः तेरहवें गुणस्थानक में 7 योग माने जाते हैं।

अयोगी अवस्था में सभी योगों का निरोध हो जाता है, अतः उनमें एक भी योग नहीं होता है।

38 गुणस्थानकों में उपयोग

ति अनाण दु दंसाइम, दुगे अजइदेसि नाणदंसण तिगं।
ते मीसि मीसा समणा, जयाइ केवल दु अंत दुगे ।।48।।

शब्दार्थ :-

ति अनाण=तीन अज्ञान	**दुदंस**=दो दर्शन
आइम दुगे=पहले दो गुणस्थान में	**अजइ**=अविरत सम्यग्दृष्टि
देसि=देशविरति में	**नाणदंसणतिगं**=ज्ञान-दर्शन त्रिक
मीसि=मिश्रगुणस्थानक में	**मीसा**=मिश्र
समणा=मन सहित	**जयाइ**=संयत आदि
केवलदु=केवलद्विक	**अंत दुगे**=अन्तिम दो में

भावार्थ : मिथ्यात्व और सास्वादन नाम के प्रथम दो गुणस्थानकों में तीन अज्ञान और दो दर्शन-ये पाँच उपयोग होते हैं।

अविरत सम्यग्दृष्टि व देशविरति में तीन ज्ञान व तीन दर्शन, ये छह उपयोग होते हैं।

मिश्र गुणस्थानक में तीन ज्ञान व तीन दर्शन ये छह उपयोग होते हैं, परंतु अज्ञानमिश्रित ज्ञान होता है।

प्रमत्त से लेकर क्षीणमोह तक सात गुणस्थानक में उक्त छह व मनः पर्यवज्ञान, ये सात उपयोग होते हैं ।

सयोगी व अयोगी गुणस्थानक में केवलज्ञान व केवलदर्शन ये दो उपयोग होते हैं ।

विवेचन : मिथ्यात्व और सास्वादन पहले दो गुणस्थानकों में सम्यक्त्व का अभाव होने से सम्यक्त्व के सहचारी पाँचज्ञान तथा अवधि व केवलदर्शन ये 7 उपयोग नहीं होते हैं, अतः वहाँ 5 ही उपयोग होते हैं ।

चौथे और पाँचवें गुणस्थानक में मिथ्यात्व का अभाव होने से तीन अज्ञान नहीं होते है, सर्वविरति न होने से मनःपर्यवज्ञान व घाति कर्मों का क्षय न होने से केवलद्विक भी नहीं होता है, अतः छह उपयोग का अभाव होने से छह ही उपयोग होते हैं ।

तीसरे गुणस्थान में तीन ज्ञान व तीन दर्शन कहे हैं, परंतु मिश्रदृष्टि होने से ज्ञान भी अज्ञान मिश्रित होते हैं ।

छठे से बारहवें में मिथ्यात्व न होने के कारण तीन अज्ञान तथा घाति कर्मों का क्षय न होने से केवलद्विक नहीं होते हैं, अतः 5 ही उपयोग होते हैं ।

तेरहवें व चौदहवें सयोगी-अयोगी गुणस्थानक में घातिकर्मों का क्षय हो जाने से छद्मस्थ अवस्था में होनेवाले दस उपयोग नहीं होते हैं, अतः सिर्फ केवलज्ञान व केवलदर्शन दो ही उपयोग होते हैं ।

39 सिद्धांत के मंतव्य

सासण भावे नाणं, विउव्वगाहारगे उरल मिस्सं ।
नेगिंदिसु सासाणो, नेहाहिगयं सुयमयं पि ।।49।।

शब्दार्थ :-

सासण भावे=सास्वादन भाव में	**नाणं=**ज्ञान
विउव्वगाहारगे=वैक्रिय आहारक	**उरलमिस्सं=**औदारिकमिश्र
नेगिंदिसु=एकेन्द्रिय में नहीं	**सासाणो=**सास्वादन
नेहा=न महां	**अधिगयं=**अधिकार
सुयमयं=श्रुत मत	**पि=**भी

भावार्थ : सास्वादन अवस्था में सम्यग्ज्ञान, वैक्रिय शरीर और आहारक शरीर बनाते समय औदारिक मिश्र काययोग, एकेन्द्रिय जीवों में सास्वादन गुणस्थान का अभाव ये तीन बातें सिद्धांत सम्मत हैं, फिर भी इस ग्रंथ में इनका अधिकार नहीं है ।

विवेचन : कई विषयों में सिद्धांत और कर्मग्रंथ में मतभेद है ।

(1) सिद्धांत के मत से दूसरे गुणस्थान में मति व श्रुत ज्ञान को स्वीकार किया गया है । यद्यपि सास्वादन में रहा जीव मिथ्यात्व के संमुख है परंतु मिथ्यात्वी नहीं, उसमें सम्यक्त्व का अंश होने से कुछ विशुद्धि है, अतः ज्ञान ही मानना चाहिए ।

इसके विपरीत कर्मग्रंथ के अनुसार दूसरे गुणस्थान में ज्ञान नहीं, बल्कि अज्ञान मानते हैं । उनका मत है कि दूसरे गुणस्थान में रहा जीव मिथ्यात्व के अभिमुख है इसलिए उसके परिणाम में मलिनता अधिक होती है, अतः उसे अज्ञान ही मानना चाहिए ।

(2) सिद्धांत का मत है कि लब्धि द्वारा वैक्रिय और आहारक शरीर बनाते समय औदारिक मिश्र काययोग होता है, परंतु वह शरीर छोड़ते समय वैक्रियमिश्र और आहारकमिश्र होता है । लब्धि से वैक्रिय या आहारक शरीर बनाते समय औदारिक शरीर के द्वारा ही वैक्रिय व आहारक पुद्गलों को ग्रहण किया जाता है, अतः औदारिक शरीर की प्रधानता होने के कारण औदारिक मिश्रकाययोग का ही व्यवहार होना चाहिए । परंतु उस शरीर को छोड़ते समय औदारिक शरीर की प्रधानता नहीं होती है, अतः उस समय वैक्रिय मिश्र या आहारकमिश्र काययोग ही मानना चाहिए ।

कर्मग्रंथ का मत यह है कि वैक्रिय व आहारक शरीर बनाते व छोड़ते समय वैक्रिय मिश्र या आहारकमिश्र का ही योग होता है औदारिक मिश्रका नहीं ।

औदारिक शरीर जन्मसिद्ध है और वैक्रिय व आहारक शरीर लब्धिजन्य हैं, अतः लब्धिजन्य शरीर की प्रधानता को ध्यान में रखकर वैक्रिय शरीर व आहारक शरीर बनाते व छोड़ते समय वैक्रिय मिश्र या आहारक मिश्र ही मानना चाहिए औदारिक मिश्र नहीं ।

(3) सिद्धांत के अनुसार एकेन्द्रियों में सास्वादन गुणस्थान नहीं मानते हैं, परंतु कर्मग्रंथ के अनुसार एकेन्द्रिय में सास्वादन गुणस्थान भी होता है ।

इसके सिवाय भी मतभेद है–

सिद्धांत के अनुसार ग्रंथिभेद के बाद क्षायोपशमिक सम्यक्त्व माना गया है, जबकि कर्मग्रंथ के अनुसार औपशमिक सम्यक्त्व माना गया है ।

40 लेश्या व बंध हेतु

छ सु सव्वा तेउ तिगं, इगि छसु सुक्का अयोगि अल्लेसा ।
बंधस्स मिच्छ अविरइ, कसाय जोग त्ति चउ हेऊ ।।50।।

शब्दार्थ :-

छसु=छह गुणस्थान में	**सव्वा=**सभी
तेउ तिगं=तेउत्रिक	**इगि=**एक में
छसु=छह में	**सुक्का=**शुक्ल लेश्या
अयोगि=अयोगी गुणस्थान	**अल्लेसा=**लेश्या रहित
बंधस्स=बंध के	**मिच्छ=**मिथ्यात्व
अविरइ=अविरति	**कसाय जोग=**कषाय योग
चउ=चार	**हेऊ=**हेतु

भावार्थ : पहले छह गुणस्थानों में छह लेश्याएँ हैं । सातवें गुणस्थान में तेज, पद्म और शुक्ल ये तीन लेश्याएँ हैं ।

आठवें से तेरहवें तक छह गुणस्थानों में सिर्फ शुक्ल लेश्या है ।

चौदहवें गुणस्थान में एक भी लेश्या नहीं है ।

कर्मबंध के चार हेतु हैं । (1) मिथ्यात्व (2) अविरति (3) कषाय और (4) योग

विवेचन : प्रत्येक लेश्या के अध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण हैं अतः उसके तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मंद, मंदतर और

मंदतम भेद समझने चाहिए । कृष्ण आदि जो अशुभ लेश्याएँ हैं, उनके छठे गुणस्थानक में अतिमंदतम और पहले गुणस्थानक में अति तीव्रतम परिणाम समझने चाहिए, उसी प्रकार शुक्ल लेश्या के परिणाम भी छठे गुणस्थानक में तीव्रतम और पहले गुणस्थानक में मंदतम समझने चाहिए ।

सातवें गुणस्थानक में आर्त्त व रौद्रध्यान का अभाव होने से तथा अशुभ लेश्याओं का अभाव होने से तेज, पद्म और शुक्ल रूप तीन शुभ लेश्याएँ ही होती हैं ।

कर्मबंध के मुख्य चार हेतु बतलाए हैं—

(1) मिथ्यात्व : मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला आत्मा का वह परिणाम है जिसके उदय से तत्त्व में अतत्त्व बुद्धि और अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि होती है ।

(2) अविरति : अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से आत्मा में पैदा होने वाला वह परिणाम है जिसके उदय से पाप में पापबुद्धि होने पर भी आत्मा पाप का त्याग नहीं कर पाती है ।

(3) कषाय : चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा में पैदा होने वाला वह परिणाम है जिसके उदय से आत्मा में क्षमा आदि गुण पैदा नहीं होते हैं और क्रोध आदि के भाव पैदा होते हैं ।

(4) योग : मन, वचन और काया के आलंबन से आत्मा में होनेवाली वह प्रवृत्ति, जिससे आत्मा नवीन कर्मों का बंध करती है ।

अभिगहियमणभिगहिया-भिनिवेसिय संसइयमणाभोगं ।
पण मिच्छ बार अविरइ, मण करणानियमु छजियवहो ।।51।।

शब्दार्थ :-

अभिगहिय=आभिग्राहिक
अभिनिवेसिय=आभिनिवेशिक
अणाभोगं=अनाभोग
मिच्छ=मिथ्यात्व
अणभिगहिया=अनभिग्राहिक
संसइय=सांशयिक
पण=पाँच
बार=बारह

अविरइ=अविरति	**मण=**मन
करण=इन्द्रियाँ	**अनियमु=**अविरति
छजिय=छह जीवनिकाय	**वहो=**वध

भावार्थ : मिथ्यात्व के पाँच प्रकार है–(1) आभिग्राहिक (2) अनभिग्राहिक (3) आभिनिवेशिक (4) सांशयिक (5) अनाभोग । अविरति के बारह भेद हैं । मन और पाँच इन्द्रियों को वश में न रखना तथा छह जीव निकाय का वध ।

विवेचन :

(1) आभिग्राहिक मिथ्यात्व : तत्त्व की परीक्षा किए बिना ही किसी गलत सिद्धांत का पक्षपात करना और सत्य पक्ष का खंडन करना आभिग्राहिक मिथ्यात्व है ।

(2) अनाभिग्राहिक मिथ्यात्व : किसी भी सिद्धांत के गुण-दोषों की परीक्षा किए बिना सभी को एक समान मानना, अनाभिग्राहिक मिथ्यात्व है ।

(3) आभिनिवेशिक मिथ्यात्व : अपने पक्ष को असत्य जानने पर भी उसको सत्य सिद्ध करने के लिए प्रयत्न करना, आभिनिवेशिक मिथ्यात्व है ।

(4) सांशयिक मिथ्यात्व : भगवान के बताए हुए जीव अजीव आदि तत्त्वों में शंका पैदा करना । जैसे-भगवान के बताये हुए धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य वास्तव में हैं अथवा नहीं । इस प्रकार शंका करना ।

(5) अनाभोग मिथ्यात्व : विचार और ज्ञान के अभाव में मोह की प्रगाढ़तम अवस्था में एकेन्द्रिय आदि में अनाभोग मिथ्यात्व होता है ।

अविरति के 12 भेद हैं । मन की स्वच्छंदता पूर्वक की प्रवृत्ति वह मन की अविरति है । इसी प्रकार चक्षु, कान आदि पाँच इन्द्रियों की स्वच्छंद प्रवृत्ति भी पाँच अविरति हैं ।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय आदि जीवों की हिंसा के त्याग की प्रतिज्ञा के अभाव को भी छह प्रकार की अविरति कहा है । इस प्रकार अविरति के 12 भेद हुए ।

नव सोल कसाया पनर जोग इय उत्तरा उ सगवन्ना ।
इग चउ पण ति गुणेसु, चउ ति दु इग पच्चओ बंधो ।।52।।

शब्दार्थ :-

नव=नौ	**सोल**=सोलह
कसाया=कषाय	**पनर**=पंद्रह
जोग=योग	**इय**=आदि
उत्तरा=उत्तरभेद	**सगवन्ना**=सत्तावन
इग=एक	**चउ**=चार
पण=पाँच	**ति**=तीन
गुणेसु=गुणस्थानक में	**चउ**=चार
ति=तीन	**दु**=दो
इग=एक	**पच्चओ**=निमित्त
बंधो=बंध	

भावार्थ : कषायों के नौ तथा सोलह कुल पच्चीस भेद होते हैं । योग के पंद्रह भेद हैं । इस प्रकार बंध हेतुओं के कुल 57 भेद हुए ।

पहले गुणस्थान में चारों हेतुओं से बंध होता है । दूसरे से पाँचवें तक चार गुणस्थानकों में तीन हेतुओं से बंध होता है । छठे से दसवें तक पाँच गुणस्थानकों में दो हेतुओं से बंध होता है तथा ग्यारहवें से तेरहवें तक तीन गुणस्थानकों में एक हेतु से बंध होता है ।

विवेचन : हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद ये नौ नोकषाय कहलाते हैं ।

अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानीय, प्रत्याख्यानीय और संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ (4 x4) इस प्रकार सोलह कषाय कहलाते हैं ।

ये नौ तथा सोलह मिलकर कषाय के पच्चीस भेद होते हैं । चार मन, चार वचन और सात काया के कुल 15 योग कहलाते हैं ।

इस प्रकार मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग के 5 + 12 + 25 + 15 = 57 भेद होते हैं ।

41 गुणस्थानों में मूल बंध हेतु

◆ पहले गुणस्थानक में मिथ्यात्व आदि चार हेतु पाए जाते हैं । वहाँ चार हेतुओं से कर्मबंध होता है ।

◆ दूसरे से पाँचवें गुणस्थानक में मिथ्यात्व का अभाव होने से वहाँ चार में से तीन ही बंध के हेतु होते हैं ।

◆ छठे से दसवें गुणस्थानक में मिथ्यात्व और अविरति का अभाव होने से बंध के दो ही हेतु होते हैं ।

◆ ग्यारहवें से तेरहवें गुणस्थानक में मिथ्यात्व, अविरति और कषाय का विच्छेद हो जाने से सिर्फ योगजन्य शाता वेदनीय कर्म का बंध होता है ।

चौदहवें गुणस्थानक में योग का भी अभाव होता है, अतः वहाँ कर्मबंध का सर्वथा अभाव होता है ।

चउ मिच्छ मिच्छ अविरइ, पच्चइया साय सोल पणतीसा ।
जोग विणु ति पच्चइया हारग जिण वज्ज सेसाओ ।।53।।

शब्दार्थ :-

चउ=चार	**मिच्छ=**मिथ्यात्व
अविरइ=अविरति	**पच्चइया=**हेतु से
साय=साता	**सोल=**सोलह
पणतीसा=पैंतीस	**जोग विणु=**योग बिना
ति पच्चइया=तीन कारणों से	**आहारग=**आहारक नामकर्म
जिणवज्ज=तीर्थंकर नाम छोड़कर	**सेसाओ=**शेष से

भावार्थ : साता वेदनीय का बंध मिथ्यात्व आदि चारों हेतुओं से होता है । नरकत्रिक आदि सोलह प्रकृतियों का बंध सिर्फ मिथ्यात्व से होता है ।

तिर्यंचत्रिक आदि पैंतीस प्रकृतियों का बंध मिथ्यात्व और अविरति इन दो हेतुओं से होता है ।

तीर्थंकर और आहारक नाम कर्म इन दो को छोड़कर ज्ञानावरणीय आदि 65 प्रकृतियों का बंध मिथ्यात्व, अविरति और कषाय के कारण होता है ।

विवेचन : बंध योग्य कुल 120 प्रकृतियाँ कही गई हैं । इनमें साता वेदनीय का बंध मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग इन चारों हेतुओं से कहा गया है ।

नरकत्रिक, जाति चतुष्क, स्थावर चतुष्क, हुंडक, आतप नामकर्म, सेवार्त, संघयण, नपुंसकवेद और मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियों का बंध मिथ्यात्व हेतुक कहा गया है, क्योंकि इन प्रकृतियों का बंध सिर्फ मिथ्यात्व गुणस्थानक में ही होता है ।

तिर्यंचत्रिक, स्त्यानर्द्धित्रिक, दुर्भगत्रिक, अनंतानुबंधी चतुष्क, मध्यम संस्थान चतुष्क, मध्यम संहनन चतुष्क, नीचगोत्र, उद्योत नामकर्म, अशुभ विहायोगति, स्त्रीवेद, वज्रऋषभनाराच संहनन, मनुष्यत्रिक, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और औदारिकद्विक इन पैंतीस प्रकृतियों का बंध द्विहेतुक है, क्योंकि ये प्रकृतियां पहले गुणस्थानक में मिथ्यात्व और दूसरे आदि गुणस्थानों में अविरति से बाँधी जाती हैं ।

साता वेदनीय, नरकत्रिक आदि सोलह, तिर्यंचत्रिक आदि पैंतीस, तीर्थंकर नाम कर्म व आहारकद्विक आदि 55 प्रकृतियों को छोड़कर जो शेष पैंसठ प्रकृतियाँ रहती हैं, उनका बंध त्रिहेतुक है अर्थात् पहले गुणस्थानक में मिथ्यात्व से दूसरे आदि चार गुणस्थानों में अविरति से तथा छठे आदि चार गुणस्थानकों में कषाय से होता है ।

यद्यपि मिथ्यात्व की हाजरी में अविरति आदि तीन हेतु भी होते हैं तथा अविरति की उपस्थिति में कषाय आदि तथा कषाय की उपस्थिति में योग भी अवश्य होते हैं फिर भी पहले गुणस्थानक में मिथ्यात्व की प्रधानता, दूसरे आदि चार गुणस्थानकों में अविरति की प्रधानता तथा छठे आदि चार गुणस्थानकों में कषाय की प्रधानता और अन्य हेतुओं की गौणता समझना चाहिए ।

तीर्थंकर नाम कर्म के बंध का कारण सिर्फ सम्यक्त्व और आहारक द्विक के बंध का हेतु संयम होने से इन प्रकृतियों की गिनती कषायहेतुक प्रकृतियों में नहीं की है ।

पण पन्न पन्न तिय छहिअ, चत्त उणचत्त छ चउ दुग वीसा ।
सोलस दस नव नव सत्त, हेउणो न उ अजोगिंमि ।।54।।

शब्दार्थ :-

पण=पाँच	**पन्न**=पचास
तिय=तीन	**छहिअ**=छ अधिक
चत्त=चालीस	**उणचत्त**=उन्चालीस
छ=छ	**चउ**=चार
दुगवीसा=बाईस	**सोलस**=सोलह
नव=नौ	**सत्त**=सात
हेउणो=हेतु	

भावार्थ : पहले गुणस्थानक में बंध के हेतु प्रवपन हैं। दूसरे में पचास, तीसरे में तेतालीस, चौथे में छियालीस, पाँचवें में उन्चालीस, छठे में छब्बीस, सातवें में चौबीस, आठवें में बाईस, नौवें में सोलह, दसवें में दस, ग्यारह-बारहवें में नौ तथा तेरहवें में सात बंध हेतु हैं। चौदहवें गुणस्थान में बंध का ही अभाव है।

विवेचन : बंध के कुल हेतु 5 + 12 + 25 + 15 = 57 हैं। पहले गुणस्थान में 55, दूसरे गुणस्थान में 50, तीसरे मिश्रगुणस्थान में 43, चौथे अविरत गुणस्थान में 46, पाँचवें देशविरत गुणस्थान में 39, छठे अप्रमत्त गुणस्थान में 26, सातवे अप्रमत्त गुणस्थान में 24, आठवें अपूर्व करण में 22, नौवें अनिवृत्ति करण में 16, दसवें सूक्ष्म संपराय में 10, ग्यारहवें उपशांत मोह में 9, बारहवें क्षीणमोह में 9, तेरहवें सयोगी में 7 बंध के हेतु होते हैं। चौदहवें गुणस्थान में बंध का एक भी हेतु नहीं है।

पणपन्न मिच्छि हारग दुगूण सासाणि पन्नमिच्छ विणा ।
मिस्स दुग कंम अणविणु, तिचत्त मीसे अह छचत्ता ।।55।।
सदुमिस्सकंम अजए, अविरइकम्मुरल मीस बिकसाये ।
मुत्त गुणचत्तदेसे, छवीस साहारदु पमत्ते ।।56।।

अविरइ इगार तिकसाय, वज्ज अपमत्ति मीस दुग रहिया ।
चउवीस अपुव्वे पुण, दुवीस अविउव्वियाहारा ।।57।।

शब्दार्थ :-

पण=पाँच
मिच्छि=मिथ्यात्व में
सासाणि=सास्वादन में
मिच्छ=मिथ्यात्व
मिस्सदुग=मिश्रद्विक
तिचत्त=तेतालीस
छचत्ता=छियालीस
कम्मुरल=कार्मण-औदारिक
बिकसाये=दूसरे कषाय में
गुणचत्त=उन्चालीस
छवीस=छब्बीस
पमत्ते=प्रमत्त गुणस्थानक में
इगार=ग्यारह
वज्ज=छोड़कर
मीसदुग=मिश्रद्विक
चउवीस=चौबीस
पुण=पुनः
अविउव्वियाहार=वैक्रिय-आहारक छोड़कर
पन्न=पचास
हारगदुगूण=आहारकद्विक को छोड़कर
पन्न=पाँच
विणा=बिना
कंम=कार्मण
मीसे=मिश्र में
अजए=अविरति में
मीस=मिश्र
मुत्त=छोड़कर
देसे=देशविरति में
साहारदु=आहारद्विक सहित
अविरइ=अविरति
तिकसाय=तृतीय कषाय
अपमत्ति=अप्रमत्त में
रहिया=रहित
अपुव्वे=अपूर्व करण में
दुवीस=बाईस

भावार्थ : मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में आहारक द्विक को छोड़कर पचपन बंध हेतु हैं ।

सास्वादन गुणस्थान में पाँच मिथ्यात्व के सिवाय पचास बंध हेतु हैं ।

मिश्र गुणस्थान में औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र, कार्मण और अनंतानुबंधी चतुष्क इन सात को छोड़कर तेतालीस बंध हेतु हैं ।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में पूर्वोक्त तेतालीस तथा कार्मण,

औदारिक मिश्र और वैक्रिय मिश्र ये तीन मिलाकर छयालीस बंध हेतु हैं ।

देशविरति गुणस्थान में कार्मण, औदारिक मिश्र, त्रस अविरति तथा अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क इन सात के सिवाय उन्चालीस बंध हेतु हैं ।

प्रमत्त संयत गुणस्थान में ग्यारह अविरति व प्रत्याख्यानीय चतुष्क इन पंद्रह को छोड़कर उक्त उन्चालीस में से चौबीस तथा आहारक द्विक मिलाकर छब्बीस बंध हेतु हैं ।

अप्रमत्त गुणस्थानक में पूर्वोक्त छब्बीस में से मिश्रद्विक के सिवाय चौबीस बंध हेतु हैं ।

अपूर्वकरण गुणस्थानक में वैक्रिय काययोग और आहारक काययोग को छोड़कर बाईस बंध हेतु हैं ।

विवेचन : पहले गुणस्थानक में आहारक द्विक का बंध नहीं होता है, क्योंकि इन दोनों प्रकृतियों का बंध सर्वविरति संयम सापेक्ष हैं, अतः उन्हें छोड़ पचपन बंध के हेतु हैं ।

दूसरे गुणस्थानक में पाँचों मिथ्यात्व का अभाव है । अतः उन्हें छोड़कर पचास हेतु बतलाए है ।

तीसरे गुणस्थानक में अनंतानुबंधी चारों कषायों का अभाव होता है, क्योंकि उनका उदय दूसरे गुणस्थानक तक ही है । इस गुणस्थानक में मृत्यु भी नहीं होती है, अतः अपर्याप्त अवस्था में होनेवाले कार्मण काययोग, औदारिक मिश्र काययोग और वैक्रिय मिश्र काययोग भी नहीं होते हैं, अतः प्रकृतियाँ घट जाने से तीसरे गुणस्थान में तेतालीस प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

चौथा गुणस्थानक अपर्याप्त अवस्था में भी हो सकता है, अतः उस अवस्था में होने वाले कार्मण, औदारिक मिश्र और वैक्रिय मिश्र भी हो सकते है, अतः इस गुणस्थानक में छियालीस बंध हेतु होते हैं ।

पाँचवें गुणस्थानक में त्रस की हिंसा का त्याग होता है, अतः त्रस की अविरति नहीं होती है । यह गुणस्थान पर्याप्तावस्था में ही होता है अतः अपर्याप्त अवस्था में होनेवाले कार्मण और औदारिक मिश्रयोग भी नहीं होते है । अप्रत्याख्यानीय चार कषाय का उदय भी चौथे गुणस्थानक तक ही होता है, आगे के गुणस्थानों में इनका उदय नहीं होता है । अतः यहाँ 7 बंध हेतु

कम हो जाने से उन्चालीस ही बंध हेतु होते हैं ।

पाँचवें गुणस्थानक में वैक्रिय मिश्र काययोग होता है, परंतु वह अपर्याप्त अवस्थाभावी न होकर जब कोई वैक्रिय लब्धि धारी वैक्रिय लब्धि का प्रयोग करता है, तब पर्याप्त अवस्था में भी होता है । छठा गुणस्थानक सर्व-विरति रूप होने से वहाँ ग्यारह अविरति और प्रत्याख्यानीय चार कषायों का भी अभाव हो जाने से शेष चौबीस तथा आहारक द्विक जुड़ने से छब्बीस हेतु होते हैं ।

छठे गुणस्थानक में आहारक लब्धिधारी मुनि आहारक शरीर बनाते हैं, तब आहारक और आहारक मिश्र काययोग भी होता है ।

अप्रमत्त संयत गुणस्थान में चौबीस ही बंध हेतु हैं । वैक्रिय शरीर का आरंभ और त्याग तथा आहारक शरीर का प्रारंभ व त्याग प्रमत्त अवस्था में ही होता है अतः सातवें गुणस्थान में उन दो बंध हेतुओं का भी अभाव हो जाता है ।

वैक्रिय व आहारक शरीर का योग सातवें गुणस्थानक तक ही होता है, आठवें से आगे के गुणस्थानकवालों को ये दो शरीर नहीं होते हैं अतः आठवें गुणस्थानक में ये दो योग कम हो जाने से चौबीस ही बंध हेतु होते हैं ।

अछ हास सोल बायरि, सुहुमे दस वेय संजलण ति विणा ।
खीणुवसंति अलोभा, सजोगि पुव्वुत्त सगजोगा ।।58।।

शब्दार्थ :-

अछहास=हास्यषट्क छोड़	**बायरि**=अनिवृत्ति बादर गुणस्थानक में
सुहुमे=सूक्ष्म संपराय गुणस्थान में	**दस**=दस
वेय=वेद	**संजलणति**=तीन संज्वलन
विणा=बिना	**खीणु**=क्षीणमोह
उवसंति=उपशम	**अलोभा**=लोभ सिवाय
पुव्वुत्त=पूर्वोक्त	**सगजोगा**=सात योग

भावार्थ : अनिवृत्ति बादर गुणस्थानक में हास्यषट्क के सिवाय शेष सोलह हेतु होते हैं । सूक्ष्मसंपराय में तीन वेद और तीन संज्वलन को छोड़

दस हेतु हैं। उपशांत व क्षीणमोह में संज्वलन लोभ सिवाय नौ हेतु हैं। सयोगि गुणस्थानक में पूर्वोक्त सात हेतु हैं।

विवेचन : आठवें से आगे के गुणस्थानकों में हास्यषट्क का उदय नहीं होता है, अतः नौवें गुणस्थानक में सोलह हेतु ही होते हैं।

तीन वेद तथा सं ज्वलन क्रोध, मान और माया का उदय नौवें गुणस्थानक तक ही होता है। अतः इन छह को छोड़ दसवें गुणस्थानक में दस ही हेतु होते हैं।

संज्वलन लोभ का उदय दसवें गुणस्थानक तक ही होता है, अतः ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानक में नौ हेतु ही होते हैं चार मनोयोग, चार वचन योग और एक औदारिक काय योग।

तेरहवें गुणस्थानक में सिर्फ 7 हेतु होते हैं, दो मनोयोग-सत्य और असत्यामृषा मनोयोग, दो वचनयोग-सत्य और असत्यामृषा वचनयोग तथा औदारिक काययोग, औदारिक मिश्र काययोग व कार्मण काययोग।

चौदहवें गुणस्थानक में योग का भी अभाव होने से बंधहेतु का सर्वथा अभाव होता है।

42 गुणस्थानों में बंध

अपमत्तंता सत्तट्ठ मीस अपुव्व बायरा सत्त ।
बंधइ छस्सुहुमो एगमुवरिया बंधगा जोगी ।।59।।

शब्दार्थ :-

अपमत्तंता=अप्रमत्त तक	**सत्तट्ठ**=सात-आठ
मीस=मिश्र	**अपुव्व**=अपूर्वकरण
बायरा=बादर संपराय	**सत्त**=सात
बंधइ=बाँधता है	**छस्सुहुमो**=सूक्ष्म संपरायवाला छह
एग=एक	**मुवरिया**=ऊपर के गुणस्थानक
बंधग=बंधक	**अजोगी**=अयोगी गुणस्थानक

भावार्थ : अप्रमत्त गुणस्थानक तक सात या आठ प्रकृतियों का बंध होता है। मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्ति बादर गुणस्थानक में सात का बंध होता है।

सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में छ तथा उपशांत मोह आदि गुणस्थानों में एक प्रकृति का बंध होता है । अयोगि गुणस्थानक में बंध नहीं होता है ।

विवेचन : तीसरे गुणस्थानक को छोड़कर पहले से सातवें गुणस्थानक तक में सात या आठ प्रकृतियों का बंध होता है । जब आयुष्य का बंध करते हैं, तब आठ और उसके सिवाय सात प्रकृतियों का बंध होता है ।

तीसरे, आठवें और नौवें गुणस्थानक में आयुष्य का बंध न होने के कारण सात प्रकृतियों का ही बंध होता है । तीसरे गुणस्थानक में स्वभाव से ही आयुष्य का बंध नहीं होता है तथा आठवें और नौवें गुणस्थानक में परिणाम की विशुद्धि अधिक होने के कारण वहां भी आयुष्य का बंघ नहीं होता है ।

दसवें गुणस्थानक में आयुष्य व मोह का बंध न होने के कारण छह का ही बंध होता है । मोहनीय कर्म का बंध बादर कषाय के उदय के निमित्त से ही होता है, अतः बादर कषाय का उदय न होने से मोहनीय का बंध नहीं होता है ।

ग्यारहवें आदि तीन गुणस्थानकों में सिर्फ साता वेदनीय का ही बंध होता है । कषायों का सर्वथा उदय न होने से अन्य प्रकृतियों का बंध असंभव है ।

43 गुणस्थानों में सत्ता और उदय

आसुहुमं संतुदये अट्ठ वि मोह विणु सत्त खीणंमि ।
चउ चरिम दुगे अट्ठ उ, संते उवसंति सत्तुदए ।।60।।

शब्दार्थ :-

आसुहुमं=सूक्ष्म संपराय तक
अट्ठवि=आठों भी
सत्त खीणंमि=क्षीणमोह में सात
अट्ठउ=आठ कर्म
उवसंते=उपशांत मोह में
संतुदए=सत्ता तथा उदय मे
मोहविणु=मोह बिना
चउ चरिमदुगे=अंतिम दो गुणस्थान में चार कर्म
संते=सत्ता में
सत्तुदए=उदय में सात

भावार्थ : सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक तक आठ कर्मों की सत्ता और आठ कर्मों का उदय है ।

क्षीणमोह गुणस्थानक में सत्ता और उदय सात कर्मों का है ।

सयोगी और अयोगि गुणस्थानक में चार का उदय व चार की सत्ता है ।

उपशांत मोह गुणस्थानक में आठ कर्मों की सत्ता और सात कर्मों का उदय है ।

विवेचन : पहले मिथ्यात्व गुणस्थानक से लेकर दसवें गुणस्थानक तक उदय व सत्ता आठों कर्मों की होती है ।

ग्यारहवें गुणस्थानक में मोहनीय कर्म सत्ता में होता है, परंतु उदय में नहीं होता है, अतः उदय सात कर्मों का व सत्ता आठ कर्मों की होती है ।

बारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म क्षीण हो जाता है, अतः सत्ता व उदय सात कर्मों का होता है।

तेरहवें व चौदहवें गुणस्थानक में अघाति का ही उदय व सत्ता होती है, अतः सत्ता व उदय में चार ही कर्म होते हैं ।

44 गुणस्थानों में उदीरणा

उइरंति पमत्तंता, सगट्ठ मीसट्ठ वेयआउ विणा ।
छग अपमत्ताइ तओ, छ पंच सुहुमो पणुवसंतो ।।61।।

शब्दार्थ :-

उइरंति=उदीरणा करता है
सगट्ठ=सात अथवा आठ
विणा=बिना
अपमत्ताइ=अप्रमत्त आदि
छ पंच=छह अथवा पाँच
पणुवसंतो=उपशांत मोह में पाँच
पमत्तंता=प्रमत्त तक
वेय आउ=वेद-आयुष्य
छग=छह कर्म
तओ=उसके बाद
सुहुमो=सूक्ष्म संपराय में

भावार्थ : प्रमत्त गुणस्थानक तक सात या आठ कर्मों की उदीरणा होती है । मिश्र गुणस्थानक में आठ कर्म की, अप्रमत्त, अपूर्वकरण और अनिवृत्ति

बादर इन तीन गुणस्थानों में वेदनीय व आयुष्य को छोड़ छह कर्मों की, सूक्ष्म संपराय में छह या पाँच कर्मों की तथा उपशांतमोह गुणस्थान में पाँच कर्मों की उदीरणा होती है ।

विवेचन : जो कर्म उदयमान हो उसी की उदीरणा होती है, जो कर्म उदयमान नहीं है, उसकी उदीरणा नहीं होती है ।

उदयमान कर्म आवलिका प्रमाण शेष रह जाता है, तब उदीरणा रुक जाती है ।

तीसरे गुणस्थानक को छोड़ पहले से छठे गुणस्थानक में सात या आठ कर्मों की उदीरणा होती है । जब आयु की उदीरणा नहीं होती है, तब सात कर्मों की और आयुष्य की उदीरणा हो तब आठ कर्मों की उदीरणा होती है ।

इस नियम के अनुसार वर्तमान भव का आयुष्य जब आवलिका प्रमाण बाकी रह जाता है, तब आयु की उदीरणा रुक जाती है ।

उदीरणा अर्थात् एक आवलिका के बाहर रहे हुए कर्म-दलिकों को खींचकर उदयावलिका में लाकर डालना ।

जब आयुष्य कर्म आवलिका मात्र बाकी होता है, तब आवलिका के बाहर तो आयुष्य कर्म के दलिक हैं नहीं, अतः किसकी उदीरणा होगी ?

यद्यपि आगामी भव का आयुष्य सत्ता में है परंतु वह आवलिका के बाहर है-अभी उसका उदय चालू नहीं है, अतः उसकी तो उदीरणा होती नहीं है ।

अंतिम आवलिका में आयुष्य की उदीरणा न होने से चरम आवलिका में सात कर्मों की ही उदीरणा होती है ।

तीसरे गुणस्थानक में मृत्यु नहीं होती है, अतः वहाँ आठ कर्मों की उदीरणा होती है । आयुष्य की अंतिम आवलिका में यद्यपि उदीरणा रुक जाती है, परंतु इस गुणस्थानक का संभव नहीं है ।

सातवें, आठवें व नौवें गुणस्थानक में आयु व वेदनीय कर्म को छोड़ छह की उदीरणा होती है । दो कर्मों की उदीरणा के लिए जो अध्यवसाय चाहिए उससे अति विशुद्ध अध्यवसाय होने के कारण वहाँ उदीरणा नहीं होती है ।

दसवें गुणस्थानक में पाँच या छह कर्मों की उदीरणा होती है । आयु व वेदनीय की उदीरणा न हो तो छह और मोहनीय की भी उदीरणा न हो तो पाँच की उदीरणा समझनी चाहिए ।

मोहनीय की उदीरणा दसवें गुणस्थानक की अंतिम आवलिका में रुक जाती है ।

ग्यारहवें गुणस्थानक में आयु, वेदनीय व मोहनीय की उदीरणा न होने के कारण पाँच की ही उदीरणा होती है । इस गुणस्थान में मोहनीय कर्म उदय में न होने से उसकी उदीरणा भी नहीं होती है ।

पण दो खीण दु जोगी, णुदीरगु अजोगी थोव उवसंता ।
संख गुण खीण सुहुमा-नियट्टी अपुव्व सम अहिया ।।62।।

शब्दार्थ :-

पण=पाँच	**दो**=दो
खीण=क्षीणमोहवाला	**दु**=दो
जोगी=सयोगी गुणस्थानक	**णुदीरगु**=अनुदीरक
अजोगी=अयोगी गुणस्थानक	**थोव**=थोड़ा
उवसंत=उपशांत मोह	**संखगुण**=संख्यातगुण
खीण=क्षीणमोह	**सुहुम**=सूक्ष्मसंपराय
अनियट्टी=अनिवृत्ति	**अपुव्व**=अपूर्वकरण
सम=समान	**अहिया**=अधिक

भावार्थ : क्षीणमोह गुणस्थानक में पाँच या दो कर्मों की उदीरणा है सयोगि गुणस्थानक में दो की उदीरणा है । अयोगि केवली गुणस्थानक में उदीरणा का अभाव है ।

उपशांत मोह गुणस्थानक के जीव थोड़े हैं, क्षीणमोहवाले उनसे संख्यात गुणे हैं । सूक्ष्म संपराय अनिवृत्ति बादर व अपूर्वकरण इन तीन गुण-स्थानों में रहे जीव क्षीणमोह से विशेषाधिक हैं और परस्पर तुल्य हैं ।

विवेचन : बारहवें गुणस्थानक में रहा जीव मोहनीय, आयुष्य व वेदनीय को छोड़ पाँच कर्मों की उदीरणा प्रथम समय से करता है, परंतु

बारहवें गुणस्थान में सिर्फ एक आवलिका बाकी रहती है, तब ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म की उदीरणा रुक जाती है, क्योंकि वे कर्म-दलिक एक आवलिका जितने ही बचे हैं और उसकी उदीरणा होती नहीं है ।

तेरहवें गुणस्थान में चार अघाति कर्म ही बाकी रहे हैं, वेदनीय और आयुष्य की उदीरणा तो सातवें गुणस्थानक में रुक गई है अतः यहाँ सिर्फ दो कर्मों की ही उदीरणा रहती है ।

चौदहवें गुणस्थानक में योग का ही अभाव है । योग के बिना उदीरणा नहीं होती है अतः यहाँ उदीरणा का सर्वथा अभाव है ।

45 अल्पबहुत्व

अब चौदह गुणस्थानकों में रहे जीवों का अल्पबहुत्व बताते हैं ।

अन्य गुणस्थानक वाले जीवों की अपेक्षा ग्यारहवें उपशांतमोह गुणस्थानक में रहे जीव सबसे कम हैं, क्योंकि इस गुणस्थानक को पानेवाले जीव (प्रतिपद्यमान) एक साथ में चोपन ही होते हैं । इसकी अपेक्षा क्षीणमोह गुणस्थानकवाले जीव प्रतिपद्यमान की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं, क्योंकि बारहवें गुणस्थानक में एक साथ में आरोहण करनेवाले 108 जीव होते हैं, पूर्व की अपेक्षा द्विगुण होने से संख्यात गुणे कहा है ।

यह विधान इन दोनों गुणस्थानकों में अधिक-से-अधिक प्रवेश करनेवाले जीवों की अपेक्षा से है, बाकी तो इन गुणस्थानकों में कभी जीव होते हैं तो कभी नहीं भी होते हैं । कभी क्षीणमोह में एक भी जीव न हो और उपशांतमोह में हो, ऐसा भी हो सकता है ।

बारहवें गुणस्थानक की अपेक्षा आठवें नौवें और दसवें गुणस्थानक वाले जीव विशेषाधिक समझने चाहिए ।

इन तीन गुणस्थानकों में उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी दोनों के जीव आते हैं, अतः 54 + 108 = 162 होते हैं । अतः बारहवें गुणस्थानक की अपेक्षा विशेषाधिक है । परंतु इन तीनों गुणस्थानकों में जीव परस्पर तुल्य होते हैं, क्योंकि इन तीनों में उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान जीव 162-162 होते हैं ।

जोगि अपमत्त इयरे, संखगुणा देस सासणामीसा ।
अविरइ अजोगि मिच्छा, असंख चउरो दुवे णंता ।।63।।

शब्दार्थ :-

जोगि=सयोगी केवली	**अपमत्त**=अप्रमत्त
इयरे=प्रमत्त	**संखगुणा**=संख्यात गुणा
देस=देशविरति	**सासणा**=सास्वादन
मीसा=मिश्र	**अविरइ**=अविरति
अजोगि=अयोगी	**मिच्छा**=मिथ्यात्वी
चउरो=चार	**असंख**=असंख्यात गुणा
दुवे=दो	**णंता**=अनंत गुणा

भावार्थ : सयोगी, अप्रमत्त और प्रमत्त गुणस्थानवर्ती पूर्व की अपेक्षा संख्यात गुणा हैं ।

देशविरति, सास्वादन, मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि पूर्व-पूर्व से असंख्यात गुणे हैं ।

अयोगि केवली और मिथ्यादृष्टि जीव पूर्व-पूर्व से अनंतगुणे हैं ।

विवेचन : आठवें, नौवें और दसवें गुणस्थानकवाले जीवों की अपेक्षा तेरहवें सयोगी गुणस्थानक में रहे जीव संख्यात गुणा हैं, क्योंकि वे जघन्य से दो करोड़ और उत्कृष्ट से नौ करोड़ होते हैं ।

तेरहवें गुणस्थानक की अपेक्षा सातवें अप्रमत्त गुणस्थानकवाले जीव संख्यात गुणा हैं, क्योंकि अप्रमत्त मुनि उत्कृष्ट से दो हजार करोड़ से नौ हजार करोड़ होते हैं । अप्रमत्त की अपेक्षा प्रमत्त मुनि संख्यात गुणा हैं । यद्यपि प्रमत्त की संख्या भी कोटिसहस्त्र पृथक्त्व है, फिर भी अप्रमत्त की अपेक्षा प्रमत्त का काल अधिक है, अतः अप्रमत्त की अपेक्षा प्रमत्त की संख्या संख्यात गुणी कही है ।

प्रमत्त मुनियों की अपेक्षा देशविरति, सास्वादन, मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि के जीव क्रम से असंख्यात गुणा हैं, क्योंकि प्रमत्त गुणस्थानक तो सिर्फ मनुष्य को ही होता है, जब कि देशविरति गुणस्थानक तिर्यंचों में भी होता है, अतः सर्वविरतिधर की अपेक्षा देशविरतिधर असंख्यात गुणे हैं ।

देशविरतिधर की अपेक्षा सास्वादन गुणस्थानकवाले असंख्यात गुणे हैं। देशविरतिधर मनुष्य व तिर्यंच में ही होते हैं, जबकि सास्वादन गुणस्थानकवर्ती चारों गतियों में होते हैं अतः असंख्यात गुणे हैं ।

(यद्यपि सास्वादन गुणस्थानक हमेशा नहीं होता है, कभी हो तो दो-पाँच जीव भी होते हैं, परंतु उत्कृष्ट से असंख्यात गुणे होते हैं ।)

सास्वादन की अपेक्षा मिश्रदृष्टि वाले असंख्यात गुणे हैं, क्योंकि सास्वादन का काल अल्प है जबकि मिश्र का काल अधिक है। सास्वादन का काल छह आवलिका व मिश्र का काल अन्तर्मुहूर्त है ।

तीसरे गुणस्थानकवालों की अपेक्षा चौथे गुणस्थानक वाले असंख्यात गुणे है। चौथा गुणस्थानक सदा काल होता है और उसका काल भी अधिक है ।

अविरत सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा अयोगि गुणस्थानक में रहे अनंत गुणा हैं, क्योंकि सभी सिद्ध अयोगी हैं ।

अयोगी की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव अनंतगुणा हैं क्योंकि साधारण वनस्पतिकाय में अनंतानंत जीव हैं ।

इन चौदह गुणस्थानकों में 1-4-5-6-7 व 13 वें गुणस्थानकवाले जीव संसार में हमेशा रहते हैं। क्योंकि वनस्पतिकाय आदि में मिथ्यात्वी जीव सदा काल रहे हुए हैं ।

महाविदेह में अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरतिधर, सर्वविरतिधर व अप्रमत्त मुनि हमेशा होते हैं ।

भरतक्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र में अवसर्पिणी के छठे आरे व उत्सर्पिणी के पहले-दूसरे आरे में अविरत सम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानक नहीं होते हैं परंतु इन गुणस्थानकवाले महावि देह में तो होते ही हैं, अतः ये छह गुणस्थानक ध्रुव गुणस्थानक कहलाते हैं ।

शेष 8 गुणस्थानक अध्रुव हैं, वे गुणस्थानकवाले जीव कभी संसार में होते हैं, कभी नहीं भी होते हैं ।

46 छह भाव और उनके भेद

उवसमखय मीसोदय,परिणामा दुनवट्ठार इगवीसा ।
तिय भेय संनिवाइय, संमं चरणं पढम भावे ।।64।।

शब्दार्थ :-

उवसम=औपशमिक भाव	**खय=**क्षायिक भाव
मीस=क्षायोपशमिक	**उदय=**औदयिक
परिणामा=पारिणामिक	**दु=**दो
नव=नौ	**ट्ठार=**अठारह
इगवीसा=इक्कीस	**तिअभेअ=**तीन भेद
सन्निवाइय=सान्निपातिक	**सम्मं=**सम्यक्त्व
चरणं=चारित्र	**पढम भावे=**प्रथम भाव में

भावार्थ : औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक ये पाँच भाव हैं । उनके क्रमशः दो, नौ, अठारह, इक्कीस और तीन भेद हैं ।

प्रथम औपशमिक भाव के सम्यक्त्व और चारित्र ये दो भेद हैं ।

विवेचन : जीव कै मानसिक परिणाम को भाव कहते हैं । ये मूल भाव पाँच हैं–

(1) औपशमिक भाव : मोहनीय कर्म के उपशम से होनेवाले भाव को औपशमिक भाव कहते है । मिथ्यात्व मोहनीय के उपशम से जो गुण प्रकट होता है वह प्राथमिक औपशमिक सम्यक्त्व तथा दर्शन सप्तक के उपशमन से जो गुण प्रकट होता है वह श्रेणी संबंधी औपशमिक सम्यक्त्व तथा शेष 21 प्रकृतियों के उपशमन से जो गुण प्रकट होता है वह औपशमिक चारित्र है ।

औपशमिक सम्यक्त्व चौथे से ग्यारहवें गुणस्थानक तक होता है जबकि औपशमिक चारित्र सिर्फ उपशम-श्रेणी में होता है ।

औपशमिक भाव के मुख्य दो भेद हैं- उपशम सम्यक्त्व और उपशम चारित्र ।

(2) क्षायिक भाव : कर्म के सर्वथा क्षय से जो भाव पैदा होता है, उसे क्षायिक भाव कहते हैं ।

(3) क्षायोपशमिक भाव : कर्म के उदयावलि प्रविष्ट मंद रस स्पर्द्धक का क्षय और अनुदित कर्म जो उदीरणा, अपवर्तना आदि द्वारा उदय में आने की शक्यतावाले हैं उन्हें वहीं दबा देना अर्थात् उदय में न आने देना उसका नाम उपशम है। क्षय और उपशम के मिश्र भाव को क्षयोपशम भाव कहते हैं, यह भाव घाति-कर्मों का ही होता है, अघातिकर्मों का नहीं।

(4) औदयिक भाव : कर्म की उदयजन्य अवस्था को औदयिक भाव कहते हैं।

(5) पारिणामिक भाव : कर्मों की अपेक्षा बिना, वस्तु के सहज स्वाभाविक स्वरूप को पारिणामिक भाव कहते हैं।

बीए केवलजुयलं, सम्मं दाणाइलद्धि पण चरणं।
तइए सेसुवओगा, पण लद्धी सम्मविरइ दुगं ।।65।।

शब्दार्थ :-

बीए=दूसरे भाव में	**केवलजुयलं=**केवलद्विक
सम्मं=सम्यक्त्व	**दाणाइलद्धि=**दान आदि लब्धियाँ
पण=पाँच	**चरणं=**चारित्र
तइए=तीसरे भाव में	**सेसुवओगा=**शेष उपयोग
पणलद्धी=पाँच लब्धियाँ	**सम्म=**सम्यक्त्व
विरइदुगं=विरतिद्विक	

भावार्थ : दूसरे क्षायिक भाव में केवलद्विक, सम्यक्त्व, दान आदि पाँच लब्धियाँ और चारित्र, ये नौ भेद हैं।

तीसरे क्षायोपशमिक भाव में केवलद्विक को छोड़ दस उपयोग, दान आदि पाँच लब्धियाँ, सम्यक्त्व और विरति द्विक ये 18 भेद हैं।

विवेचन : क्षायिक भाव के 9 भेद हैं-

1. ज्ञानावरणीय कर्म के संपूर्ण क्षय से जन्य केवलज्ञान।
2. दर्शनावरणीय कर्म के संपूर्ण क्षय से जन्य केवलदर्शन।
3. दर्शनसप्तक के क्षय से जन्य क्षायिक सम्यक्त्व।
4. चारित्र मोहनीय के क्षय से जन्य क्षायिक चारित्र।

5. पाँच अंतराय-दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय के संपूर्ण क्षय से जन्य दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य पाँच लब्धियाँ ।

कर्म के क्षय से जन्य जो गुण आत्मा में प्रकट होता है, उस गुण का कभी नाश नहीं होता है । क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति चौथे गुणस्थानक से क्षायिक चारित्र की प्राप्ति क्षीणमोह गुणस्थानक से तथा शेष 7 क्षायिक भावों की प्राप्ति तेरहवें गुणस्थानक में होती है ।

क्षायोपशमिक भाव : यह भाव चार घातिकर्मों का ही होता है । इसके 18 भेद हैं । उदित के क्षय और अनुदित के उपशम को क्षयोपशम कहते हैं ।

जो कर्म जिस रसवाला उदय में आया है उसे उसी समय में हीन रसवाला बनाकर विपाक से भोगकर नष्ट करना, उसे क्षय कहते हैं तथा उदयावलिका के बाहर रहे हुए दलिकों को उदीरणा व अपवर्तनादि करणों को असाध्य करना उसे उपशम कहते हैं ।

मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से मतिज्ञान और मति अज्ञान ।

श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से श्रुतज्ञान और श्रुतअज्ञान ।

अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से अवधिज्ञान और विभंगज्ञान ।

मनःपर्यव ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से मनःपर्यवज्ञान ।

चक्षु दर्शनावरणीय के क्षयोपशम से चक्षुदर्शन ।

अचक्षु दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से अचक्षुदर्शन ।

अवधि दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से अवधि दर्शन प्रकट होता है । दानादि पाँच अंतराय कर्म के क्षयोपशम से दान आदि पाँच लब्धियाँ प्रकट होती हैं ।

दर्शन मोहनीय व अनंतानुबंधी कषाय के क्षयोपशम से क्षयोपशम सम्यक्त्व ।

अप्रत्याख्यानीय कषाय के क्षयोपशम से देशविरति गुण और प्रत्याख्यानीय कषाय के क्षयोपशम से सर्वविरति गुण प्रकट होता है ।

मति अज्ञान आदि क्षायोपशमिक भाव अभव्य के अनादि अनंत और विभंग ज्ञान सादि-सांत है ।

मति ज्ञान आदि भाव भव्य के सादि-सांत और दान आदि पाँच लब्धियाँ तथा अचक्षुदर्शन अनादि सांत है ।

अन्नाणमसिद्धत्तासंजम लेसा कसाय गइ वेया ।
मिच्छं तुरिए भव्वा-भव्वत्त जिअत्त परिणामे ।।66।।

शब्दार्थ :-

अन्नाणं=अज्ञानत्व	**असिद्धत्त=**असिद्धत्व
असंजम=असंयम	**लेसा=**लेश्या
कसाय=कषाय	**गइ=**गति
वेया=वेद	**मिच्छं=**मिथ्यात्व
तुरिए=चौथे भाव में	**भव्व=**भव्य
अभव्वत्त=अभव्यत्व	**जिअत्त=**जीवत्व
परिणामे=पारिणामिक भेद	

भावार्थ : अज्ञान, असिद्धत्व, असंयम, छह लेश्या, चार कषाय, चार गति, तीन वेद और मिथ्यात्व इस प्रकार 21 भेद चौथे औदयिक भाव के हैं– भव्यत्व, अभव्यत्व और जीवत्व ये पारिणामिक भाव हैं ।

विवेचन : औदयिक भाव के 21 भेद हैं

–अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव और मिथ्याज्ञान दोनों है । ज्ञान का अभाव ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से तथा मिथ्याज्ञान, मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय का फल है ।

–आत्मा के संसार-परिभ्रमण की अवस्था को **असिद्धत्व** कहते है । यह आठों कर्मों के उदय का फल है ।

असंयम-यह विरति के अभाव रूप है । अप्रत्याख्यानीय कषाय के उदय का परिणाम अविरति है ।

6 लेश्या – पुद्गल वर्गणा स्वरूप होने से नामकर्म के उदयजन्य है । कुछ आचार्यों के मत से लेश्या मोहनीयकर्म के उदयजन्य भी है । कुछ आचार्य आठों कर्मों के उदयजन्य भी कहते हैं ।

4 कषाय – मोहनीय कर्म के उदय से जन्य हैं ।

4 गति : गति नाम कर्म के उदय से जन्य है ।

3 वेद : नोकषाय मोहनीय कर्म के उदय से जन्य है ।

1 मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जन्य है ।

यद्यपि औदयिक भाव 21 कहे गए हैं, परंतु उपलक्षण से निद्रा आदि अन्य सभी भाव भी औदयिक समझने चाहिए ।

पारिणामिक भाव 3 हैं-इनमें कर्मों की अपेक्षा नहीं होती है । ये सहज भाव हैं । भव्यत्व, अभव्यत्व और जीवत्व ये तीन भेद हैं ।

मोक्ष में जाने की योग्यता भव्यत्व भाव है । मोक्ष में जाने की अयोग्यता अभव्यत्व भाव है । चैतन्य युक्तता जीवत्व भाव है ।

इन पाँच भावों के कुल 53 भेद होते है ।

चउ चउ गईसु मीसग, परिणामुदएहिं चउ सखइएहिं ।
उवसमजुएहिं वा चउ, केवलि परिणामुदय खइए ।।67।।
खय परिणामि सिद्धं नराण पणजोगुवसमसेढीए ।
इय पनर संनिवाइय भेया वीसं असंभविणो ।।68।।

शब्दार्थ :-

चउ=चार भंग
मीसग=मिश्र
सखइएहिं=क्षायिक के साथ
वा=अथवा
परिणामुदय=पारिणामिक-औदयिक
खय परिणामि=क्षायिक-पारिणामिक
नराण=मनुष्य को
उवसमसेढीए=उपशम श्रेणी में
पनर=पंद्रह
भेया=भेद
असंभविणो=असंभवित
चउ गइसु=चार गति में
परिणामुदएहिं=पारिणामिक व औदयिक के साथ
उवसमजुएहिं=उपशम युक्त
केवलि=केवली भगवंत
खइए=क्षायिक
सिद्धा=सिद्धों को
पणजोग=पाँच संयोग का भंग
इय=इस प्रकार
सन्निवाइय=सान्निपातिक
वीसं=बीस

भावार्थ : क्षायोपशमिक, पारिणामिक और औदयिक ये त्रिसंयोगी सान्निपतिक भाव के चार गति आश्रित चार भंग होते हैं। क्षायिक के साथ चतुः संयोगी हो तथा उपशम के साथ चतुःसंयोगी हो उसके चार गति के आश्रय से चार भंग होते हैं तथा शरीरधारी केवली भगवंत पारिणामिक, औदयिक व क्षायिक भाव में होते हैं।

सिद्ध भगवंतों को क्षायिक व पारिणामिक द्विसंयोगी सांनिपातिक भाव होता है। पाँच भावों का पंचसंयोग रूप सान्निपातिक भाव उपशम श्रेणिवाले मनुष्य के होता है।

उक्त प्रकार से छह सान्निपातिक भावों के पंद्रह भेद होते हैं-शेष बीस सांनिपातिक भाव असंभव हैं।

विवेचन : औपशमिक आदि पाँच भावों में दो-तीन-चार व पाँच भावों के मिलने पर (संयोग से) सांनिपातिक भाव होते हैं।

दो भावों के योग से द्विक संयोगी

तीन भावों के योग से त्रिक संयोगी

चार भावों के योग से चतुस्संयोगी

पाँच भावों के योग से पंच संयोगी कहलाता है।

47 द्विक संयोगी के 10 भेद

1. औपशमिक + क्षायिक
2. औपशमिक + क्षायोपशमिक
3. औपशमिक + औदयिक
4. औपशमिक + पारिणामिक
5. क्षायिक + क्षायोपशमिक
6. क्षायिक + औदयिक
7. क्षायिक + पारिणामिक
8. क्षायोपशमिक + औदयिक
9. क्षायोपशमिक + पारिणामिक
10. औदयिक + पारिणामिक

48 त्रिक संयोगी के 10 भेद

11. औपशमिक + क्षायिक + क्षायोपशमिक
12. औपशमिक + क्षायिक + औदयिक

13. औपशमिक + क्षायिक + पारिणामिक

14. औपशमिक + क्षायोपशमिक + औदयिक

15. औपशमिक + क्षायोपशमिक + पारिणामिक

16. औपशमिक +औदयिक + पारिणामिक

17. क्षायिक + क्षायोपशमिक + औदयिक

18. क्षायिक + क्षायोपशमिक + पारिणामिक

19. क्षायिक + औदयिक + पारिणामिक

20. क्षायोपशमिक + औदयिक + पारिणामिक

49 चतुस्संयोगी के 5 भेद

21. औपशमिक + क्षायिक + क्षायोपशमिक + औदयिक

22. औपशमिक + क्षायिक + क्षायोपशमिक + पारिणामिक

23. औपशमिक + क्षायिक + औदयिक + पारिणामिक

24. औपशमिक + क्षायोपशमिक + औदयिक + पारिणामिक

25. क्षायिक + क्षायोपशमिक + औदयिक + पारिणामिक

50 पंच संयोगी

26. औपशमिक + क्षायिक + क्षायोपशमिक + औदयिक + पारिणामिक

सान्निपातिक भाव के कुल 26 भेद होते हैं, परंतु उनमें से 6 भेद ही जीवों में पाए जाते हैं । 20 भेद असंभवित हैं ।

(1) त्रिक संयोग के 10 भेदों में से दसवाँ भेद-क्षायोपशमिक + पारिणामिक व औदयिक से बना है, वह चारों गतियों में पाया जाता है । चारों गति के जीवों में क्षायोपशमिक भाव भावेन्द्रिय आदि रूप में, पारिणामिक भाव जीवत्व रूप में व औदयिक भाव कषाय आदि रूप में होता है ।

इस प्रकार त्रिक संयोग के गति रूप स्थान भेद से चार भेद हुए–

चतुस्संयोग के पाँच भेदों में से पाँचवाँ भेद चारों गतियों में पाया जाता है, इसके भी स्थानभेद से चार भेद होते हैं ।

चारों गति में क्षायिक भाव के रूप में क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक भाव में भावेन्द्रिय आदि, पारिणामिक भाव में जीवत्व तथा औदयिक भाव कषाय आदि हैं। इसके भी चार गति से चार भेद हुए।

चतुः संयोग के पाँच भेदों में से चौथा भेद चारों गतियों में पाया जाता है।

चारों गति में औपशमिक भाव सम्यक्त्व रूप में, क्षायोपशमिक भाव भावेन्द्रिय के रूप में, पारिणामिक भाव जीवत्व आदि रूप में तथा औदयिक भाव कषाय आदि के रूप में समझना चाहिए। इस प्रकार इसके चार गति की अपेक्षा से चार भेद हुए।

त्रिक संयोग के 10 भेदों में से नौ भेद भवस्थ केवली के होते हैं। केवली में पारिणामिक भाव में जीवत्व, औदयिक भाव में मनुष्य गति आदि तथा क्षायिक भाव में केवलज्ञान आदि हैं।

द्विकसंयोग के 10 भेदों में सातवाँ भेद सिद्धों में होता है। सिद्धों में पारिणामिक भाव के रूप में जीवत्व व क्षायिक भाव में केवलज्ञान आदि हैं।

पंच संयोगरूप सान्निपातिक भेद उपशम श्रेणिवाले मनुष्यों का होता है-उन्हें क्षायिक भाव सम्यक्त्व रूप में, औपशमिक भाव चारित्र रूप में, क्षायोपशमिक भाव भावेन्द्रिय रूप में, पारिणामिक भाव जीवत्व आदि व औदयिक भाव लेश्या आदि रूप में हैं। इस प्रकार छह सांनिपातिक भाव संभवित हैं। स्थानभेद के अनुसार इनके पंद्रह भेद होते हैं।

51 अजीव द्रव्यों के भाव

मोहेव समो मीसो, चउघाइसु अट्ठकंमसु च सेसा।
धम्माइ पारिणामिय भावे खंधा उदइए वि ।।69।।

शब्दार्थ :-

मोहेव समो=उपशम भाव मोह का ही	**मीसो**=क्षायोपशमिक भाव
चउघाइसु=चार घाति कर्मों का	**अट्ठ**=आठ
कम्मसु=कर्मों में	**सेसा**=शेष
धम्माइ=धर्मास्तिकाय आदि	**पारिणामिय**=पारिणामिक
खंधा=स्कंध	**उदइए**=औदयिक भाव में

भावार्थ : औपशमिक भाव मोहनीय कर्म के ही होते हैं क्षायोपशमिक भाव चार घाति कर्मों का ही होता है । शेष तीन भाव आठों कर्मों के ही होते हैं ।

धर्मास्तिकाय आदि अजीव द्रव्यों के पारिणामिक भाव हैं किंतु पुद्‌गल स्कंध के औदयिक व पारिणामिक ये दो भाव हैं ।

विवेचन : कर्म की उपशम अवस्था, यह उसका औपशमिक भाव है कर्म का क्षयोपशम यह उसका क्षायोपशमिक भाव है । कर्म का क्षय यह उसका क्षायिक भाव है । कर्म का उदय यह उसका औदयिक भाव है । कर्म की परिणमन अवस्था, यह उसका पारिणामिक भाव है ।

आठ कर्मों में सिर्फ मोहनीय का ही उपशम होता है । अतः औपशमिक भाव सिर्फ मोहनीय का कहा गया है ।

चार घाति कर्मों का क्षयोपशम होता है, अतः क्षायोपशमिक भाव घातिकर्मों का कहा गया है । सिर्फ केवलज्ञानावरणीय और केवल दर्शनावरणीय की प्रकृतियों का निरोध नहीं होने के कारण उनका क्षयोपशम नहीं होता है ।

क्षायिक, पारिणामिक व औदयिक भाव आठों कर्मों का होता है ।

अजीव द्रव्य के भाव

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय और काल ये पाँच अजीव द्रव्य हैं ।

पुद्‌गलास्तिकाय को छोड़ शेष अजीव द्रव्यों का पारिणामिक भाव ही होता है ।

धर्मास्तिकाय द्रव्य जीव-पुद्‌गल को अनादि काल से गति करने में सहायक है तो अधर्मास्तिकाय स्थिति में सहयाक है, आकाशास्तिकाय अवकाश देने में सहायक है ।

काल द्रव्य समय-पर्याय रूप स्वकार्य में अनादि काल से परिणमन करता है ।

पुद्‌गल द्रव्य के पारिणामिक व औदयिक ये दो भाव हैं । परमाणु-

पुद्‌गल का सिर्फ पारिणामिक भाव है परंतु स्कंध रूप पुद्‌गल के पारिणामिक व औदयिक ये दो भाव हैं ।

स्कंधों में भी द्व्यणुक आदि सादि स्कंध पारिणामिक भाववाले ही हैं, लेकिन औदारिक आदि शरीर रूप स्कंध पारिणामिक व औदयिक दो भाववाले हैं क्योंकि वे स्व-स्व रूप में परिणत होते रहने के कारण पारिणामिक भाववाले व औदारिक आदि शरीर नाम कर्म के उदयजन्य होने के कारण औदयिक भाववाले हैं ।

पुद्‌गल के जो दो भाव कहे हैं, वे कर्म पुद्‌गल से भिन्न के समझने चाहिए । कर्म पुद्‌गल के तो औपशमिक आदि पाँचों भाव होते हैं ।

52 गुणस्थानों में मूल भाव

संमाइ चउसु तिग चउ भावा चउ पणुवसामगुवसंते ।
चउ खीणा पुव्व तिन्नि, सेस गुण ट्ठाणगेगजीए ।।70।।

शब्दार्थ :-

संमाइ=सम्यक्त्व आदि	**एगजीए=**एक जीव को आश्रय
तिग=तीन	**चउसु=**चार में
भावा=भाव होते हैं	**चउ=**चार
उवसामगुवसंते=उपशमक व उपशांत में	**पण=**पाँच
	चउ=चार
खीणापुव्वे=क्षीणमोह व अपूर्व में	**तिन्नि=**तीन भाव
सेसगुण=शेष गुण	**ठाणक=**स्थानक

भावार्थ : एक जीव को सम्यग्‌दृष्टि आदि चार गुणस्थानकों में तीन या चार भाव होते हैं ।

उपशमक-नौवें-दसवें और उपशांत-ग्यारहवें गुणस्थान में चार या पाँच भाव होते हैं ।

क्षीणमोह तथा अपूर्वकरण में चार भाव होते हैं । शेष गुणस्थानकों में तीन भाव होते हैं ।

विवेचन : चौथे, पाँचवें, छठे व सातवें गुणस्थानक में तीन या चार भाव होते हैं ।

(1) औदयिक भाव-मनुष्य आदि गति

(2) पारिणामिक भाव-जीवत्व आदि

(3) क्षायोपशमिक भाव-सम्यक्त्व आदि

उपर्युक्त तीन भाव क्षायोपशमिक सम्यक्त्ववाले जीव के होते हैं, परंतु जब क्षायिक या औपशमिक सम्यक्त्व हो तब क्षायिक व औपशमिक भाव होने से कुल चार हुए ।

नौवें, दसवें व ग्यारहवें गुणस्थानक में चार या पाँच भाव होते हैं ।

उपशम श्रेणी वाला जीव हो तो उपर्युक्त तीन भाव के साथ औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ।

पाँच भाव क्षायिक समकिती के उपशम श्रेणी दरम्यान होता है ।

आठवें और बारहवें गुणस्थानों में चार भाव होते हैं । आठवें में उपर्युक्त तीन और औपशमिक या क्षायिक सम्यक्त्व का औपशमिक व क्षायिक भाव ।

बारहवें में उपर्युक्त तीन और चौथा क्षायिकभाव । क्षायिक भाव का सम्यक्त्व और क्षायिक भाव का चारित्र ।

पहले, दूसरे, तीसरे; तेरहवें व चौदहवें गुणस्थान में तीन भाव होते हैं ।

पहले, दूसरे व तीसरे में औदयिक मनुष्य गति आदि, पारिणामिक जीवत्व आदि, क्षायोपशमिक भाव इंद्रिय आदि ।

तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान में औदयिक मनुष्य गति आदि, पारिणामिक जीवत्व और क्षायिक केवलज्ञान आदि ।

53 संख्या का स्वरूप

संखिज्जेगमसंखं, परित्तजुत्तनियपयजुयं तिविहं ।
एवमणंतंपि तिहा, जहन्नमज्झुक्कसा सव्वे ।।71।।

शब्दार्थ :-

संखिज्ज=संख्यात	**एगं**=एक प्रकार
असंखं=असंख्यात	**परित्त**=परित्त
जुत्त=युक्त	**नियपयजुयं**=निजपद से युक्त
तिविहं=तीन प्रकार का	**एवमणंतंपि**=इस प्रकार अनंत भी
तिहा=तीन प्रकार	**जहन्न**=जघन्य
मज्झुक्कसा=मध्यम उत्कृष्ट	**सव्वे**=सभी

भावार्थ : संख्यात एक है । असंख्यात के तीन भेद हैं–

(1) परित्त (2) युक्त (3) निजपद युक्त अर्थात् असंख्यातासंख्यात इसी प्रकार अनंत के भी तीन भेद हैं । इन सबके जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ये तीन-तीन भेद हैं ।

विवेचन : संख्या के तीन भेद हैं (1) संख्यात (2) असंख्यात और (3) अनंत ।

संख्यात का एक ही प्रकार है । असंख्यात और अनंत के तीन-तीन भेद हैं । इस प्रकार कुल 7 भेद हुए ।

इन सबके जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ये 3-3 भेद करने पर कुल 21 भेद होते हैं ।

(1) जघन्य संख्यात (2) मध्यम संख्यात (3) उत्कृष्ट संख्यात (4) जघन्य परित्तासंख्यात (5) मध्यम परित्तासंख्यात (6) उत्कृष्ट परित्तासंख्यात । (7) जघन्य युक्तासंख्यात (8) मध्यम युक्ता संख्यात (9) उत्कृष्ट युक्ता संख्यात (10) जघन्य असंख्याता संख्यात (11) मध्यम असंख्याता संख्यात (12) उत्कृष्ट असंख्याता संख्यात (13) जघन्य परित्तानंत (14) मध्यम परित्तानंत (15) उत्कृष्ट परित्तानंत (16) जघन्य युक्तानंत (17) मध्यम युक्तानंत (18) उत्कृष्ट युक्तानंत (19) जघन्य अनंतानंत (20) मध्यम अनंतानंत (21) उत्कृष्ट अनंतानंत ।

54 संख्यात के 3 भेद

लहु संखिज्जं दुच्चिय अओ परं मज्झियं तु जा गुरुअं ।
जंबूद्दीव पमाणय चउ पल्ल परूवणाइ इमं ।।72।।

शब्दार्थ :-

लहु=लघु
दुच्चिअ=दो ही
मज्झिमं=मध्यम
जंबूद्दीव=जंबूद्वीप
चउपल्ल=चार पल्य
इमं=इस प्रकार
संखिज्जं=संख्यात
अओ परं=उसके आगे
जा गुरुअं=यावत् उत्कृष्ट
पमाणय=प्रमाणवाला
परूवणाइ=प्ररूपणा द्वारा

भावार्थ : दो की संख्या जघन्य संख्यात है । इससे आगे तीन से लेकर उत्कृष्ट संख्या के पूर्व की संख्याएँ मध्यम संख्यात हैं । उत्कृष्ट संख्यात का स्वरूप जंबूद्वीप के पल्य के निरूपण से जाना जाता है ।

विवेचन : संख्यात के तीन प्रकार हैं-जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट । दो की संख्या सबसे छोटी होने से उसे जघन्य संख्यात कहते हैं ।

उत्कृष्ट संख्यात के पहले की संख्या को मध्यम संख्यात कहते हैं ।

उत्कृष्ट संख्यात को समझने के लिए शास्त्र में पल्यों की कल्पना की गई है ।

पल्लाणवट्ठिय सलाग-पडिसलाग-महासलागक्खा ।
जोयण सहसोगाढा, सवेइयंता ससिह भरिया ।।73।।

शब्दार्थ :-

पल्ला=पल्य
सलाग=शलाका
महासलागक्खा=महाशलाका
जोयणसहसो=एक हजार योजन
सवेइयंता=वेदिका सहित
भरिया=भरा हुआ
अणवट्ठिय=अनवस्थित
पडिसलाग=प्रतिशलाका
अक्खा=नाम
ओगाढा=गहरा
ससिह=शिखा सहित

भावार्थ : चार पल्य के नाम क्रमशः अनवस्थित, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका है ।

चारों पल्य गहराई में एक हजार योजन और ऊँचाई में जंबूद्वीप की पद्मवर वेदिका पर्यंत अर्थात् साढ़े आठ योजन प्रमाण हैं । इन्हें शिखा पर्यंत सरसों से पूर्ण करने का विधान है ।

विवेचन : किसी अगम्य-अगोचर वस्तु को समझने के लिए कभी कल्पना का भी सहारा लिया जाता है ।

जो किसी कार्य रूप में परिणत की जा सके, वह सत् कल्पना कहलाती है और जो किसी वस्तु के स्वरूप को सिर्फ समझने के लिए उपयोगी हो, परंतु कार्य रूप में परिणत न हो सके उसे `असत् कल्पना' कहते हैं ।

यहाँ उत्कृष्ट संख्यात को समझने के लिए पल्यों की असत् कल्पना का जा रही है । शास्त्र में चार प्रकार के पल्य कहे हैं-

1. अनवस्थित 2. शलाका 3. प्रतिशलाका 4. महाशलाका ।

इन सबकी लंबाई-चौड़ाई एक लाख योजन की और ऊँचाई पद्मवर वेदिका प्रमाण अर्थात् 8½ योजन कही है ।

ये कल्पित पल्य तल से शिखा तक 1068 ½ योजन प्रमाण हैं ।

(1) अनवस्थित पल्य : ये अनेक प्रकार के हैं । इन सबकी लंबाई - चौड़ाई एक समान नहीं है ।

पहले अनवस्थित प्याले की लंबाई-चौड़ाई 1 लाख योजन की है, परंतु उसके बाद के आगे आगे के सभी अनवस्थित प्यालों की लंबाई-चौड़ाई अधिक-अधिक है ।

(2) शलाका : अनवस्थित प्याले की साक्षी रूप में एक-एक दाना डालना, इस प्रकार के साक्षी रूप दानों से भरा जानेवाला प्याला शलाका कहलाता है ।

(3) प्रतिशलाका : शलाका प्याला के साक्षी दाना द्वारा जो भरा जाता है, वह प्रतिशलाका है ।

(4) महाशलाका : प्रतिशलाका प्याले के साक्षी दाने से जो भरा जाय वह महाशलाका है ।

55 पल्यों को भरने की विधि

ता दीवुदहिसु इक्कि-क्कसरि सवं खिविय निट्ठिए पढमे ।
पढमं व तदंतचिय, पुण भरिए तंमि तह खीणे ।।74।।
खिप्पइ सलाग पल्लेसु, सरिसवो इय सलागखवणेणं ।
पुन्नो बीयो य तओ, पुव्विं पि व तंमि उद्धरिए ।।75।।
खीणे सलाग तइए, एवं पढमेहिं बीययं भरसु ।
तेहिं तइयं तेहिय, तुरियं जा किल फुडा चउरो ।।76।।

शब्दार्थ :-

ता=उसके बाद
इक्किक्क=एक-एक
खिविय=डालकर
पढमे=पहला प्याला
व=तरह
पुणभरिए=पुनः भरें
तंमि=उसके
दीवुदहिसु=द्वीप और समुद्र के विषय में
सरिसवं=सरसो
निट्ठिय=खाली हो
पढमं=प्रथम प्याला
तदंत चिय=अंत तक
तहखीणे=खाली होने पर ।।74।।

खिप्पइ=डालता है
पल्लेसु=प्याले में
इम=इस प्रकार
पुन्नो=पूर्ण भरे
तओ=उसके बाद
तंमि=उसमें
सलाग=शलाका
सरिसवो=सरसों का एक दाना
सलागखवणेणं=शलाका में डालते हुए
बीओ=दूसरा
पुव्वंपि=पूर्व की तरह
उद्धरिए=खाली करे ।।75।।

खीणे=खाली होने पर
तइए=तीसरे में
पढमेहिं=प्रथम
भरसु=भरो
तइयं=तीसरे प्याले को
तुरियं=चौथे प्याले को
किल=वास्तव में
सलाग=शलाका
एवं=इस प्रकार
बीयं=दूसरा शलाका
तेहिं=उस शलाका द्वारा
अ=और
ज=यावत्
फुडा=अत्यंत भरे हुए ।।76।।

भावार्थ : पूर्ण अनवस्थित पल्य में से एक-एक सर्षप द्वीप-समुद्र में डालना चाहिए, फिर जिस द्वीप या समुद्र में समाप्त हो। उस द्वीप या समुद्र पर्यंत विस्तीर्ण नया अनवस्थित पल्य बनाकर उसे सर्षप से भरना चाहिए।

उसमें से एक-एक सर्षप द्वीप-समुद्र में डालने पर जब अनवस्थित प्याला खाली हो जाय तब एक सर्षप शलाका प्याले में डालना चाहिए। इस प्रकार एक एक सर्षप डालने पर जब दूसरा शलाका पल्य भर जाय तब उसे पूर्व की तरह उठाना चाहिए।

उसमें से एक एक सर्षप निकालकर उसे खाली करना और एक-एक सर्षप प्रतिशलाका में डालना चाहिए।

इस प्रकार अनवस्थित से शलाका को, अनवस्थित शलाका से प्रति शलाका को और पहले तीन पल्य से चौथे को भर देना चाहिए इस प्रकार चारों पल्यों को भर देना चाहिए।

विवेचन : सर्व प्रथम जंबूद्वीप प्रमाण एक लाख योजन लंबा चौड़ा एवं एक हजार योजन गहरा प्याला बनाएँ। उस प्याले के आठ योजन ऊँची जगती और दो गाऊ की वेदिका बनाएँ। फिर उसे सरसों के दानों से भरकर उस पर जितनी शिखा चढ़ सके, उतने दानों से भरें।

फिर असत् कल्पना से कोई देव अपने एक हाथ में उस दानों से भरे प्याले को उठाकर दूसरे हाथ से एक-एक द्वीप और एक-एक समुद्र में एक-एक दाना डालते जाए। जिस द्वीप या समुद्र में वह प्याला खाली हो जाये उस द्वीप या समुद्र प्रमाण का एक **अनवस्थित** प्याला बनाकर उसे भी शिखा पर्यंत सरसों के दानों से भर दें-फिर उस अनवस्थित प्याले को उठाकर आगे-आगे के द्वीप-समुद्र में एक-एक दाना डालते जायें।

इस प्रकार जब वह पहला अनवस्थित प्याला खाली हो जाय तो उसकी साक्षी में एक दाना **'शलाका'** नाम के प्याले में डालना।

फिर जिस द्वीप या समुद्र में वह अनवस्थित प्याला खाली हुआ, पुनः मूल स्थान से सर्षप समाप्तिकारक द्वीप या समुद्र पर्यंत का दूसरा अनवस्थित प्याला बनाना और उसे भी शिखा पर्यंत सरसों के दानों से भर देना। फिर आगे-आगे के द्वीप-समुद्र में एक-एक दाना डालते जाना, जहाँ यह दूसरा

अनवस्थित प्याला खाली हो जाय, उसकी साक्षी में एक दाना शलाका प्याले में डाल देना, पुनः समाप्तिकारक उस द्वीप या समुद्र पर्यंत का तीसरा अनवस्थित प्याला बनाना, उसे शिखा पर्यंत दानों से भरकर आगे-आगे के द्वीप समुद्र में एक-एक दाना डालना, उसके खाली हो जाने पर एक दाना शलाका के प्याले में डालना ।

इस प्रकार करते-करते जब शलाका प्याला भी पूरा भर जाय तब अनवस्थित प्याले को ऐसे ही रखकर शलाका प्याले को उठाकर आगे के एक-एक द्वीप-समुद्र में एक-एक सर्षप डालना चाहिए जब शलाका प्याला खाली हो जाय तो साक्षी के लिए एक सर्षप प्रतिशलाका प्याले में डालना चाहिए...फिर उस अनवस्थित प्याले को उठाकर एक-एक द्वीप-समुद्र में एक एक सर्षप डालना चाहिए, उसके खाली होने पर पुनः एक दाना शलाका प्याले में डालना चाहिए ।

फिर मूल स्थान से अंतिम सर्षपवाले स्थान का नया अनवस्थित प्याला बनाना चाहिये फिर उसे भी आगे-आगे के द्वीप में 1-1 संर्षप डालकर खाली करना चाहिए-उसके खाली होने पर एक दाना शलाका प्याले में डालना चाहिये ।

इस प्रकार करते करते जब शलाका प्याला भी भर देना चाहिए ।

अब तक अनवस्थित व शलाका प्याले भरे हुए है और प्रतिशलाका में एक सर्षप है ।

फिर शलाका प्याले में से 1-1 दाना डालते हुए उसे खाली करना चाहिए उसके खाली होने पर एक दाना प्रतिशलाका प्याले में डालना चाहिए ।

अब अनवस्थित प्याला भरा हुआ है, शलाका प्याला खाली है और प्रतिशलाका में दो सर्षप पड़े हैं ।

अब पुनः पूर्वोक्त विधि से अनवस्थित प्याले को खाली कर एक सर्षप शलाका प्याले में डालना चाहिए ।

इस प्रकार शलाका प्याले को बारबार भरकर उक्त विधि से खाली करना चाहिए, उसके खाली होने पर एक दाना प्रतिशलाका में डालना चाहिए ।

इस प्रकार करते-करते प्रतिशलाका प्याला भी भर देना चाहिए । इस

प्रकार करते-करते शलाका व प्रतिशलाका प्याले भी भर जाएँ तब अनवस्थित प्याला भी भरें ।

फिर प्रतिशलाका प्याले को उठाकर उसका 1-1 दाना एक द्वीप एक समुद्र में डालें, प्रतिशलाका के खाली होने पर उसकी समाप्ति के सूचक एक दाना महाशलाका में डालना चाहिए ।

अब अनवस्थित व शलाका भरे हुए हैं-प्रतिशलाका खाली हो गया है और महाशलाका में एक दाना है ।

अब शलाका प्याले को 1-1 दाना डालकर खाली करें और एक सर्षप प्रतिशलाका में डालें और अनवस्थित को खालीकर शलाका प्याले में एक सर्षप डालें ।

इस प्रकार नया-नया अनवस्थित प्याला बनाकर उसे खाली कर 1-1 सर्षप शलाका पल्य में डालकर उसे भरना चाहिए ।

हर शलाका पल्य के खाली होने पर 1-1 दाना प्रतिशलाका में डालना चाहिए । प्रतिशलाका के भर जाने पर अनवस्थित प्याले में से 1-1 दाना डालकर खाली होने पर शलाका प्याले को भरना चाहिए । अंत में अनवस्थित को भी भर दे ।

अब तक पहले तीन प्याले भरे हुए हैं और चौथे में एक दाना है ।

पुनः प्रतिशलाका पल्य को उक्त रीति से खाली कर महाशलाका में एक सर्षप डालना चाहिए ।

अब तक दो पल्य पूर्ण हुए हैं, प्रतिशलाका खाली है और महाशलाका में दो सर्षप हैं ।

इस प्रकार प्रतिशलाका द्वारा महाशलाका को भर देना चाहिए ।

इस प्रकार पूर्व-पूर्व के पल्य खाली हो जाने के समय एक-एक सर्षप से क्रमशः चौथा, तीसरा और दूसरा पल्य जब भर जाय तब अनवस्थित पल्य जो मूल स्थान से अंतिम सर्षपवाले द्वीप या समुद्र तक लंबा-चौड़ा बनाया जाता है, उसको भी सर्षपों से भर देना चाहिए ।

इस क्रम से चारों पल्य सर्षपों से ठसाठस भर गए ।

56 पल्यों का उपयोग

पढम ति पल्लुद्धरिया, दीवुदही पल्ल चउ सरिसवा य ।
सव्वो वि एगरासी, रूवूणो परमसंखिज्जं ।।77।।

शब्दार्थ :-

पढम=प्रथम	**तिपल्लु=**तीन पल्य
उद्धरिया=खाली करना	**दीवुदहि=**द्वीप-सागर
य=तथा	**पल्लचउ=**चार प्याले
सरिसवा=सरसों के दाने	**सव्वो वि=**सभी की
एगरासी=एक ढेर	**रूवूणो=**एक दाना कम
परमसंखिज्जं=उत्कृष्ट संख्यात	

भावार्थ : जितने द्वीप-समुद्र में सर्षप का एक एक दाना डालने से पहले तीन पल्य खाली हो गए हैं, वे सब द्वीप समुद्र और परिपूर्ण चार पल्य के सर्षप, इन दोनों की संख्या मिलाने से जो संख्या हो, उसमें एक कम हो, वह उत्कृष्ट संख्यात है ।

विवेचन : अनवस्थित, शलाका और प्रतिशलाका के पल्यों को बार-बार सर्षप के दानों से भरकर उनको खाली करने की जो विधि बतलाई है, उसके अनुसार जितने द्वीपों व समुद्रों में एक-एक सर्षप पड़ा है, उन सब द्वीपों व समुद्रों की संख्या में चारों पल्यों में भरे हुए सर्षप की संख्या मिलाने पर जो संख्या आए, उसमें एक कम करने पर उत्कृष्ट संख्यात होता है ।

उत्कृष्ट व जघन्य के बीच रही संख्या को मध्यम संख्यात समझना चाहिए ।

शास्त्र में जहाँ-जहाँ संख्यात की बात आती है, वहाँ-वहाँ मध्यम संख्यात समझना चाहिए ।

57 असंख्यात का स्वरूप

रूवजुयं तु परित्ता संखं लहु अस्स रासि अब्भासे ।
जुत्तासंखिज्जं लहु आवलिया समयपरिमाणं ।।78।।

शब्दार्थ :-

रूवजुअं=कम किया दाना जोडने पर	**तु=**तथा
परित्तासंखं=परित्ति असंख्यात	**लहु=**जघन्य
अस्स=इस जघन्य का	**रासि अब्भास=**राशि अभ्यास
जुत्तासंखिज्जं=युक्त असंख्यात	**लहु=**जघन्य
आवलिया=आवलिका	**समय=**समय
परिमाणं=प्रमाण	

भावार्थ : उत्कृष्ट संख्यात में एक जोड़ने पर जघन्य परित्ति असंख्यात होता है ।

जघन्य परित्ति असंख्यात का राशि अभ्यास करने पर जघन्य युक्त असंख्यात होता है ।

जघन्य युक्त असंख्यात ही एक आवलिका के समय की संख्या है ।

विवेचन : अनवस्थित, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका के प्याले के दृष्टांत से जो संख्या बतलाई वह उत्कृष्ट संख्यात है ।

उत्कृष्ट संख्यात की संख्या में एक जोडने पर नौ असंख्यात में से पहला जघन्य परित्ति असंख्यात आता है । जघन्य परित्ति में एक आदि संख्या जोड़ने पर जब तक उत्कृष्ट परित्ति असंख्यात न आए, तब तक की संख्या मध्यम परित्ति असंख्यात कहलाती है ।

जघन्य युक्त असंख्यात–जघन्य परित्ति असंख्यात का राशि अभ्यास करने पर चौथा जघन्य युक्त असंख्यात आता है ।

राशि अभ्यास अर्थात् विवक्षित संख्या को उतनी ही बार गुणा करने पर जो संख्या आती है, उसे राशि अभ्यास कहते है ।

उदा. तीन का राशि अभ्यास 3 x 3 x 3 = 27

4 का राशि अभ्यास 4 x 4 x 4 x 4 = 256

5 का राशि अभ्यास 5 x 5 x 5 x 5 x 5 = 3125

इस प्रकार जघन्य परित्ति असंख्यात की संख्या को उसी राशि से (एक

बार न्यून) गुणने पर जो संख्या आती है वह जघन्य युक्त असंख्यात कहलाती है ।

एक आवलिका में इतने समय होते हैं ।

बि ति चउ पंचम गुणणे कमा सगासंख पढम चउसत्ता ।
णंता ते रूवजुआ, मज्झा रूवूण गुरु पच्छा ।।79।।

शब्दार्थ :-

बितिचउ=दो, तीन, चार बार	**गुणणे=**राशि अभ्यास करने पर
कमा=क्रमशः	**सगासंख=**सातवाँ असंख्यात
पढम चउ=पहला-चौथा	**सत्ता=**सातवाँ
णंता=अनंत होते हैं	**ते=**तीन अनंत
रूवजुआ=एक दाना जोड़ने पर	**मज्झा=**मध्यम
रूवूण=एक दाना कम करने पर	**गुरु=**उत्कृष्ट
पच्छा=पीछे होते हैं	

भावार्थ : दूसरी बार, तीसरी बार, चौथी बार, पाँचवीं बार, राशि-अभ्यास करने पर क्रमशः सातवाँ असंख्यात तथा पहला, चौथा व सातवाँ अनंत होता है । उसमें 1-1 दाना जोड़ने पर मध्यम होता है तथा 1-1 दाना कम करने पर पीछे का उत्कृष्ट होता है ।

विवेचन : पिछली गाथा में असंख्यात के चार भेद बतलाए । अब शेष भेद तथा अनंत के भेद बताते हैं ।

असंख्य व अनंत के मूल भेद 3-3 हैं ।

(1) परित्त असंख्यात (2) युक्त असंख्यात (3) असंख्यात असंख्यात (4) परित्त अनंत (5) युक्त अनंत (6) अनंत अनंत

असंख्य व अनंत के पुनः 3-3 भेद-जघन्य, मध्यम व उत्कृष्ट करने पर 9-9 अर्थात् 18 भेद होते हैं । उक्त छह मूल भेदों में से दूसरे का अर्थात् युक्त असंख्यात का राशि-अभ्यास करने पर उत्तर भेदों में से जघन्य असंख्यात-असंख्यात होता है, उसमें एक घटाने पर पीछे का उत्कृष्ट भेद अर्थात् उत्कृष्ट युक्त असंख्यात होता है । जघन्य युक्त असंख्यात और उत्कृष्ट युक्त असंख्यात के बीच की सब संख्याएँ मध्यम युक्त असंख्यात है ।

असंख्यात असंख्यात का राशि अभ्यास करने पर जघन्य परित्त अनन्त आता है । जघन्य परित्त अनंत में एक संख्या घटाने पर उत्कृष्ट

असंख्यात असंख्यात होता है ।

जघन्य असंख्यात असंख्यात व उत्कृष्ट असंख्यात असंख्यात के बीच की सब संख्याएँ मध्यम असंख्यात असंख्यात हैं ।

परीत्त अनंत का राशि अभ्यास करने पर अनंत का चौथा उत्तर भेद जघन्य युक्त अनंत होता है, उसमें एक संख्या कम करने पर उत्कृष्ट परीत्त अनंत आता है ।

जघन्य परीत्त अनंत व उत्कृष्ट परीत्त अनंत के बीच की संख्याएँ मध्यम परीत्त अनंत हैं ।

युक्त अनंत का राशि अभ्यास करने पर अनंत का सातवाँ उत्तर भेद जघन्य अनंतानंत आता है, उसमें एक कम करने पर उत्कृष्ट युक्त अनंत होता है । जघन्य युक्त अनंत व उत्कृष्ट युक्त अनंत के बीच की संख्याएँ मध्यम युक्त अनंत हैं ।

जघन्य अनंतानंत के आगे की सब संख्याएँ मध्यम अनंतानंत ही हैं क्योंकि सिद्धांत के अनुसार उत्कृष्ट अनंतानंत नहीं है ।

इय सुत्तुत्तं अन्ने वग्गिअमिक्कसि चउत्थयमसंखं ।
होइ असंखासंखं लहु रूवजुयं तु तं मज्झं ।।80।।

शब्दार्थ :-

इय=इस प्रकार
अन्ने=अन्य आचार्य
इक्कसि=एक बार
असंखं=असंख्यात
रूवजुयं=एक युक्त
तं मज्झं=मध्यम होता है
सुत्तुत्तं=सूत्रोक्त
वग्गिअ=वर्ग करने पर
चउत्थयं=चौथा
लहु=लघु
तु=तथा

भावार्थ : अनुयोग द्वार सूत्र में जो संख्या का स्वरूप कहा गया है, वह बतलाया ! अब अन्य आचार्यों के मतानुसार कहते हैं । चौथे जघन्य युक्त असंख्यात को एक बार वर्ग करने से जघन्य असंख्यात-असंख्यात होता है, उसमें एक जोड़ने पर वही मध्यम होता है ।

विवेचन : संख्यात-असंख्यात-अनंत के स्वरूप में कुछ आचार्यों का भिन्न मत है, अब तक अनुयोग द्वार के अनुसार सिद्धांत का मत बतलाया, अब अन्य आचार्यों का मत कहते हैं ।

अन्य आचार्यों के मत के अनुसार संख्यात के तीन भेद, असंख्यात के प्रथम पस्ति असंख्यात के तीन भेद तथा जघन्य युक्त असंख्यात तक के कुल 7 भेद तो एक समान हैं, इसमें कोई विवाद नहीं है, परंतु जघन्य युक्त असंख्यात के बाद भेद है ।

जघन्य युक्त असंख्यात का राशि अभ्यास करने से (अर्थात् उस राशि को उसी राशि से एक बार न्यून उतनी बार गुणने से जघन्य असंख्यात असंख्यात होता है । ऐसा सूत्र के अनुसार कहा था, परंतु अन्य आचार्यों के मतानुसार जघन्य युक्त असंख्यात का वर्ग (उस संख्या को उसी संख्या से गुणने पर) करें तो सातवाँ जघन्य असंख्यात असंख्यात होता है ।

रूवूणमाइमं गुरु, तिवग्गिउं तत्थिमे दसक्खेवे ।
लोगागास पएसा धम्मा धम्मेकजिअ देसा ।।81।।
ठिइबंधज्झवसाया, अणुभागा जोगछेअ पलिभागा ।
दुण्ह य समाण समया, पत्तेअ निगोअए खिवसु ।।82।।
पुण तंमि तिवग्गिअए, परित्ताणंत लहु तस्स रासीणं ।
अब्भासे लहु जुत्ताणंतं, अभव्व जिअमाणं ।।83।।

शब्दार्थ :-

रुवूणं=एक कम करने पर
गुरु=उत्कृष्ट होता है
तत्थ=वहाँ
खेवे=डालने पर
पएसा=प्रदेश
अधम्म=अधर्मास्तिकाय
आइयं=पहला
तिवग्गिउं=तीन बार वर्ग करने से
इमे दस=ये दश
लोगागास=लोकाकाश
धम्म=धर्मास्तिकाय
एक जिअदेसा=एक जीव के प्रदेश ।।81।।

ठिइबंध=स्थितिबंध के
अणुभागा=रस बंध के
पलिभागा=पलिच्छेद
समाण=काल के
पत्तेअ=प्रत्येक जीव
खिवसु=डालो
ज्झवसाया=अध्यवसाय
जोगछेअ=योग के अविभाग
दुण्ह=दो
समयो=समय
निगोअए=साधारण शरीर
।।82।।

पुण=पुनः	**तंमि=**उसमें
तिवग्गिअए=तीन बार वर्ग करने पर	**परित्ताणंत=**जघन्य परित्त अनंत
रासीणं=राशि का	**अब्भासे=**अभ्यास
लहुजुत्ताणंतं=जघन्य युक्त अनंत	**अभव्व=**अभव्य
जिअमाणं=जीवों का प्रमाण	।।83।।

भावार्थ : एक रूप कम करने पर पीछे का उत्कृष्ट होता है । अब उसका तीन बार वर्ग करके उसमें 10 वस्तुएँ डालें (1) लोकाकाश के प्रदेश (2) धर्मास्तिकाय के प्रदेश (3) अधर्मास्तिकाय के प्रदेश (4) एक जीव के प्रदेश (5) स्थितिबंध के अध्यवसाय (6) रस बंध के अध्यवसाय (7) योग के अविभाग पलिच्छेद (8) दो काल के समय (9) प्रत्येक शरीरधारी जीव (10) साधारण वनस्पतिकाय के शरीर । फिर उसका तीन बार वर्ग करें तो जघन्य परित्त अनंत होता है, उसका राशि अभ्यास करे तो जघन्य युक्त अनंत होता है । उतने अभव्य जीव हैं ।

विवेचन : जघन्य असंख्यात असंख्यात में एक संख्या घटा दी जाय तो पीछे का गुरु अर्थात् उत्कृष्ट युक्त असंख्यात होता है ।

जघन्य असंख्यात असंख्यात का तीन बार वर्ग कर उसमें 10 वस्तुओं की संख्या जोड़ी जाय–

(1) चौदह राजलोक के आकाश प्रदेशों की संख्या ।
(2) चौदह राजलोक में रहे धर्मास्तिकाय के प्रदेश ।
(3) चौदह राजलोक में रहे अधर्मास्तिकाय के प्रदेश ।
(4) एक जीव के आत्म प्रदेश (इन चारों की संख्या एक समान है)
(5) स्थिति बंध के अध्यवसाय स्थान-असंख्य लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण हैं ।
(6) रस बंध के अध्यवसाय स्थान भी असंख्य लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण हैं ।
(7) एक आत्मा के योग के अविभाग पलिच्छेद एक आत्मा के एक एक प्रदेश में असंख्यात होते हैं ।
(8) एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छह आरों में जितने समय होते हैं, उतनी संख्या ।
(9) पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, प्रत्येक वनस्पतिकाय विकलेन्द्रिय, चार गति के पंचेन्द्रिय (साधारण वनस्पति सिवाय) सभी जीवों की संख्या ।
(10) सूक्ष्म व बादर साधारण वनस्पतिकाय के मात्र शरीर की संख्या ।

इन सब संख्याओं को जोड़कर फिर उसका तीन बार वर्ग करना चाहिए ।

इस प्रकार करने पर जो संख्या आती है, उसे जघन्य परित्त अनन्त कहते हैं । इस संख्या का राशि अभ्यास करने से जघन्य युक्त अनंत की संख्या आती है, उसे चौथा अनंत कहते हैं-उतनी संख्या में इस संसार में अभव्य जीव हैं ।

तव्वग्गे पुण जायइ णंताणंतं लहु तं च तिक्खुत्तो ।
वग्गसु तहवि न तं होइ णंत खेवे खिवसु छ इमे ।।84।।
सिद्धा निगोअ जीवा वणस्सई काल पुग्गला चेव ।
सव्वमलोगनहं पुण तिवग्गिउं केवलदुगंमि ।।85।।
खित्ते णंताणंतं हवइ जिट्ठं तु ववहरइ मज्झं ।
इय सुमहत्थविआरो, लिहिओ देविंदसूरीहिं ।।86।।

शब्दार्थ :-

तव्वग्गे=उसका वर्ग करने पर	**णंताणंतं**=अनंतानंत
जायइ=होता है	**तिक्खुत्तो**=तीन बार
लहु=जघन्य	**तहवि**=तो भी
वग्गसु=वर्ग करो	**णंतखेवे**=अनंत की संख्या वाले
न तं होइ=वह नहीं होता है	डालने योग्य
खिवसु=जोडो	**छ इमे**=ये छह वस्तुएँ

सिद्धा=सिद्ध के जीव	**निगोअजीवा**=निगोद के जीव
वणस्सइ=वनस्पति के जीव	**काल**=तीन काल के समय
पुग्गला=सभी पुद्गल	**सव्वं**=संपूर्ण
अलोगनहं=अलोकाकाश के प्रदेश	**पुण**=तथा
तिवग्गिउं=तीन बार वर्ग करने पर	**केवल दुगंमि**=केवलद्विक

खित्ते=जोडने पर	**णंताणंतं**=अनंतानंत
लहु=जघन्य	**हवइ**=होता है
जिट्ठं=उत्कृष्ट	**ववहरइतु**=व्यवहार होता है
मज्झं=मध्यम	**इय**=इस प्रकार
सुमहत्थ=सूक्ष्म अर्थ	**विआरो**=विचार
लिहिओ=लिखा	**देविंदसूरीहिं**=देवेन्द्रसूरिजी

भावार्थ : उसका वर्ग करने से जघन्य अनंतानंत होता है, उसका तीन बार वर्ग करने पर भी उत्कृष्ट अनंतानंत नहीं आता है परंतु उसमें अनंत की संख्यावाली छह वस्तुओं की संख्या जोड़ें ।

(1) सिद्ध के जीव (2) निगोद के जीव (3) वनस्पतिकाय के जीव (4) तीन काल के समय (5) सभी पुद्‌गल (6) सभी अलोका काश के प्रदेश ।

इन छह वस्तुओं को जोड़ने पर पुनः तीन बार वर्गकर केवलद्विक के पर्याय जोड़ने पर उत्कृष्ट अनंतानंत होता है ।

परंतु व्यवहार मध्यम का ही होता है, इस प्रकार सूक्ष्म अर्थ के विचारवाला **यह चौथा कर्मग्रंथ देवेन्द्रसूरिजी ने लिखा है ।**

विवेचन : जघन्य युक्त अनंत नाम के चौथे अनंत का सिर्फ एक बार वर्ग करने पर जघन्य अनंतानंत नाम का सातवाँ अनंत आता है ।

उत्कृष्ट अनंतानंत : जघन्य युक्त अनंत का तीन बार वर्ग कर उसमें निम्न लिखित छह वस्तुओं की संख्या जोड़ें–

1. सिद्ध के जीव - जो अभव्य की संख्या से अनंत गुणे हैं ।
2. निगोद के जीव - सूक्ष्म-बादर दोनों प्रकार की साधारण वनस्पतिकाय के जीव
3. वनस्पतिकाय के सभी जीव- प्रत्येक और साधारण वनस्पतिकाय के सभी जीव ।
4. तीन काल के समय - भूत-भविष्यत् व वर्तमान की अनंतानंत उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल के समय
5. सभी पुद्‌गल परमाणु - आठ ग्राह्य व आठ अग्राह्य पुद्‌गल वर्गणा के सभी परमाणु
6. सभी आकाश प्रदेश - लोकाकाश और अलोकाकाश के सभी आकाश प्रदेश

इन छह वस्तुओं की संख्या जोड़ने के बाद उसका तीन बार वर्ग किया जाय फिर उसमें केवली भगवंत के केवलज्ञान और केवलदर्शन की सभी पर्यायों को जोड़ा जाय तो जो संख्या आती है उसे उत्कृष्ट अनंतानंत कहते है ।

संसार में सदा मध्यम अनंतानंत का ही व्यवहार होता है ।

संसार में रही अनंत संख्यावाली वस्तुएँ आठवे अनंत की संख्यावाली हैं, परंतु नौवें अनंत की कोई भी वस्तु नहीं है ।

इसी कारण सूत्र में नौवें अनंतवाली संख्या का निषेध किया है ।

मंदमतिवाले जीवों के लिए अगम्य, सूक्ष्म अर्थों से भरा हुआ यह **'षडशीति'** नाम का चौथा कर्मग्रंथ समाप्त हुआ ।

इसकी रचना तपागच्छ के नायक **तपस्वी जगच्चन्द्रसूरिजी म.** के शिष्य **देवेन्द्रसूरिजी** ने की है ।

प्रवचन प्रभावक परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा आलेखित

198 पुस्तकों में से प्राप्य हिन्दी भाषा में जैन धर्म का अमूल्य खजाना

Sr. No.	पुस्तक क्रमांक	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	13-14	शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना-भाग-1-2	140/-
2.	34-35	आग और पानी-भाग-1-2	115/-
3.	36	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-
4.	42	भक्ति से मुक्ति (पांचवी आवृत्ति)	40/-
5.	61	Panch Pratikraman Sootra	60/-
7.	97	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	100/-
8.	100	बीसवी सदी के महान योगी	300/-
9.	104	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	150/-
10.	109	आओ ! उपधान पौषध करें !	45/-
11.	118	शंका समाधान भाग-2	40/-
12.	123	जीव विचार विवेचन (तृतीय आवृत्ति)	60/-
13.	128	विविध-तपमाला	100/-
14.	136	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें	90/-
15.	140	वैराग्य शतक	80/-
16.	141	गुणानुवाद	70/-
17.	144	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	60/-
18.	145	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	70/-
19.	146	आध्यात्मिक पत्र	60/-
20.	153	ध्यान साधना	40/-
21.	161	अजातशत्रु अणगार	100/-
22.	163	The way of Metaphysical Life	60/-
23.	164	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-
24.	165	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-
25.	166	आओ ! भाव यात्रा करें !! भाग-2	60/-
26.	167	Pearls of Preaching	60/-
27.	168	नवकार चिंतन	60/-
28.	169	आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-1	64/-
29.	170	आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-2	70/-
30.	172	रत्न-संदेश-भाग-1	150/-
31.	174	रत्न-संदेश-भाग-2	150/-
32.	175	My Parents	60/-
33.	176	श्रावकाचार-प्रवचन भाग-1	125/-
34.	177	श्रावकाचार-प्रवचन भाग-2	125/-
35.	178	परम-तत्व की साधना भाग-2	150/-
36.	179	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
37.	182	नवपद आराधना	80/-
38.	183	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
39.	186	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
40.	188	चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-1	150/-
41.	189	चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-2	150/-
42.	190	संस्मरण	50/-
43.	191	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	70/-
44.	192	विवेकी बनों !	90/-
45.	193	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
46.	194	लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	100/-
47.	195	समाधि मृत्यु	50/-
48.	196	कर्मग्रंथ (भाग-1)	70/-
48.	196	कर्मग्रंथ (भाग-2)	70/-
49.	197	कर्मग्रंथ (भाग-3)	55/-
49.	197	कर्मग्रंथ (भाग-3)	55/-

Shubhay 98205 30299